

मुद्रक—श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस, बनारस कैण्ट

१—कप्तान साहव	५
२—इस्तीफा	१५
३—ज़िह्वाद्	२८
४—मंत्र	४०
५—प्रतिज्ञा	५६



कसान साहब

१

जगतसिंह को स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था। वह सैलानी, आचारा, घुमफड़ युवक था। कभी अमरुद के बागों की ओर निकल जाता और अमरुदों के साथ माली की गालियाँ बड़े शौक से खाता। कभी दरिया की तैर करता और मल्लाहों की टोंगियों में बैठकर उस पार के देहातों में निकल जाता। गालियाँ खाने में उसे मजा आता था। गालियाँ खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता। सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एकों को पीछे से पकड़कर अपनी ओर खींचना, घुड़ों की चाल की नकल करना, उसके मनोरञ्जन के विषय थे। आलसी काम तो नहीं करता; पर दुर्व्यसनों का दास होता है, और दुर्व्यसन धन के बिना पूरे नहीं होते। जगतसिंह को जब अवसर मिलता, घर से रुपये उड़ा ले जाता। नकद न मिले, तो दरतन और कपड़े उठा ले जाने में भी उसे संकोच न होता था। घर में जितनी शीशियाँ और बोतलें थीं, वह सब उसने एक-एक करके गुददी-बाज़ार पहुँचा दीं। पुराने दिनों की कितनी चीज़ें घर में पड़ी थीं। उसके सारे एक भी न बचीं। इस कला में ऐसा दक्ष और निपुण था कि उसकी चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था। एक बार वह बाहर-ही-बाहर, केवल कानियों के सहारे, घरने दो संज्ञिता मकान की छत पर चढ़ गया और ऊपर ही से पतल की एक बड़ी धाली लेकर उतर आया। परवाल्लों की घाट तक न गिरी।

उसके पिता टाहुर भक्तसिंह अपने जसवे के डाकूजने के मुन्गी थे। अमरुदों ने उन्हें पर का डाकूजना बड़ी दौड़घुष करने पर दिशा था; किन्तु भक्तसिंह जिन हराड़ों से बर्तों काये थे, उनमें से एक भी पूरा न हुआ। उलटती

यह हुई कि देहातों में जो भाजी-साग, उपले-ईंधन मुफ्त मिल जाते यहाँ बन्द हो गये। यहाँ सब से पुराना घरोंव था। किसी को न दवा सकते थे, न सता सकते थे। इस दुरवस्था में जगतसिंह की हथ लपकियाँ बहुत अस्तरतीं। उन्होंने कितनी ही बार उसे बड़ी निर्दयता से पीटा। जगतसिंह भीमकाय होने पर भी चुपके से मार खा लिया करता था। अगर वह अपने पिता के हाथ पकड़ लेता, तो वह हिल भी न सकते; पर जगतसिंह इतना सीनाज़ोर न था। हाँ, मार-पीट, चुड़की-धमकी किसी का भी उस पर असर न होता था।

जगतसिंह ज्यों ही घर में क्रोधम रखता, चारों ओर से काँव-काँव मच जाती—माँ दुर-दुर करके दौड़ती, वहनें गालियाँ देने लगतीं, मानो घर में कोई सौँड़ बुरा आया हो। बेचारा उलटे पाँव भागता। कभी-कभी दो-दो तीन-तीन दिन भूखा रह जाता। घरवाले उसकी सूरत से जलते थे। इन तिरस्कारों ने उसे निर्ताज्ज बना दिया था। कष्टों के ज्ञान से वह हत-सा हो गया था। जहाँ नींद था जाती वहाँ पढ़ रहता, जो कुछ मिल जाता वही खा लेता।

ज्यों-ज्यों घरवालों को उसकी चौर-कला के गुप्त साधनों का ज्ञान होता जाता था, वे उससे चौकन्ने होते जाते थे। यहाँ तक कि एक बार पूरे महीने-गर तक उसकी दात न गली। चरसवाजे के कई रुपये ऊपर चढ़ गये। मर्जेवाले ने शुआँधार तक्राजे करने गुरु क्रिये। हलवाई कड़की बातें सुनाने लगा। बेचारे जगन को निकलना मुश्किल हो गया। रात-दिन दाक-झोंक में रहता; पर धान न मिलती थी। आखिर एक दिन दिवली के भागों छीका हुआ। मरकमिह दोपहर को डाकघराने से चले, तो एक बीसा रजिस्ट्री जेब में पाया ली। काँव जाने सीई दरवाजा या डाकघराना मारकर दर मार; जितने दर जाने या जिकारों को अचकन की जेब में मिटावने को मुनिष भरती। मरकमिह को पाक लगाने हुए था ही। दिनों के पीच से जेब बदोनी, वे जेब में मिल गया। उस पर कई जगने के चिट्टे लगे थे। वह कई बार

टिकट चुराकर आधे दामों पर बेच चुका था। चट लिफ्टाफ्ला उड़ा लिया। यदि उसे मालूम होता कि उसमें नोट हैं, तो कदाचित् वह न छूता; लेकिन जब उसने लिफ्टाफ्ला फाड़ डाला और उसमें से नोट निकल पड़े, तो वह बड़े संकट में पड़ गया। वह फटा हुआ लिफ्टाफ्ला गला फाड़-फाड़कर उसके दुष्कृत्य को धिझारने लगा। उसकी दशा उस शिकारी की-सी हो गई, जो चिड़ियों का शिकार करने जाय और शनजान में किसी आदमी पर निशाना मार दे। उसके मन में पश्चात्ताप था, लज्जा थी, दुःख था; पर उस भूल का दंड सहने की शक्ति न थी। उसने नोट लिफ्टाफ्ला में रख दिये और बाहर चला गया।

बरसी के दिन थे। दोपहर को सारा घर सो रहा था; पर जगत की आँखों ने नींद न थी। आज उसकी घुरी तरह कुन्दी होगी। इसमें सन्देह न था। उसका घर पर रहना ठीक नहीं, दस-पाँच दिन के लिए उसे कहीं खिसक जाना चाहिए। तब तक लोगों का क्रोध शान्त हो जायगा। लेकिन, कहीं दूर गये बिना काम न चलेगा। बरती में वह कई दिन तक अज्ञातवास नहीं कर सकता। कोई-न-कोई ज़रूर ही उसका पता दे देगा और वह पकड़ ही लिया जायगा। दूर जाने के लिए कुछ-न-कुछ खर्च तो पास होना चाहिए। क्यों न वह लिफ्टाफ्ला में से एक नोट निकाल ले। वह तो मालूम ही हो जायगा कि उसी ने लिफ्टाफ्ला फाड़ा है, फिर एक नोट निकाल लेने में क्या हानि है। दादा के पास रुपये तो हैं ही, शक उत्तरकर दे देंगे। यह सोचकर उसने दम रुपये का एक नोट उड़ा लिया; मगर उसी वक्त उसके मन में एक नई कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। अगर वह ये सब रुपये लेकर किसी दूसरे मठर में कोई ठूकास खोल ले, तो बड़ा मज़ा हो। फिर एक-एक पैसे के लिए उसे क्यों किसी की खोरी बरती पड़े! कुछ दिनों में वह बहुत-सा रुपया जमा करके घर आयेगा, तो लोग कितने चकित हो जायेंगे।

रमने लिफ्टाफ्ला को फिर निकाला। उसमें कुछ २०० के नोट थे। दो नौ में, दूध की दूकान खोल चल सकती है। आखिर सुगरी की दूकान में दो-

चार कढ़ाव और दो-चार पीतल के थालों के सिवा और क्या है ? लेकिन कितने ठाट से रहता है । रूप्यों की चरस उड़ा देता है । एक-एक दौंव पर दस-दस रुपये रख देता है ; नफ़ा न होता, तो यह ठाट कहीं से निभाता । इस आनन्द-कल्पना में वह इतना मग्न हुआ कि उसका मन उसके कानू से बाहर हो गया, जैसे प्रवाह में किसी के पाँव उखड़ जायँ और वह लहरों में बह जाय ।

उसी दिन शाम को वह बम्बई चल दिया । दूसरे ही दिन मुंशी भक्तसिंह पर शबन का मुकदमा दायर हो गया ।

९

बम्बई के किले के मैदान में बेंड बज रहा था और राजपूत रेजिमेंट के सर्जिले सुन्दर जवान क़वायद कर रहे थे । जिस प्रकार हवा बादलों को नये-नये रूप में बनाती और बिगाड़ती है, उसी भाँति सेना का नायक सैनिकों को नये-नये रूप में बना और बिगाड़ रहा था ।

जब क़वायद खत्म हो गई, तो एक छरहरे डील का युवक नायक के सामने आकर खड़ा हो गया । नायक ने पूछा—क्या नाम है ? सैनिक ने क़ौजी सलाम करके कहा—जगतसिंह ।

‘क्या चाहते हो ?’

‘क़ौज में भरती कर लीजिए ।’

‘भरने में तो नहीं डरते ?’

‘बिलकुल नहीं—राजपूत हूँ ।’

‘बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी ।’

‘इसका भी डर नहीं ।’

‘अदन जाना पड़ेगा ।’

‘क़ौजी में जाऊँगा ।’

इसान ने देखा बन्दा का हाज़िर-जवाब, मन-बला, दिग्गज का धर्मा बचान है, तुरन्त क़ौज में भरती कर लिया । सोमरे दिन रेजिमेंट अदन की

रवाना हुआ। मगर ज्यों-ज्यों जहाज़ आगे चलता था, जगत का दिल पीछे रहा जाता था। जब तक ज़मीन का किनारा नज़र आता रहा, वह जहाज़ के डेक पर खड़ा अनुसक्त नेत्रों से उसे देखता रहा। जब वह भूमि-तट जल में विलीन हो गया, तो उसने एक ठंडी साँस ली और मुँह ढॉपकर रोने लगा। आज जीवन में पहली बार उसे प्रियजनों की याद आई। वह छोटा-सा अपना घरवा, वह गाँजे की दूकान, वह सैर-सपाटे, वह सुहृद् मित्रों के जमघटे आँखों में फिरने लगे। कौन जाने फिर कभी उनसे भेंट होगी या नहीं। एक बार वह इतना बेचैन हुआ कि जी में आया पानी में फूँद पड़े।

३

जगतसिंह को अदन में रहते तीन महीने गुजर गये। भक्ति-भक्ति की नवीनताओं ने कई दिनों तक उसे सुगंध रखा; लेकिन पुराने संस्कार फिर जागृत होने लगे। अब कभी-कभी उसे स्नेहमयी माता की याद भी आने लगी, जो पिता के क्रोध, वहनों के धिक्कार और स्वजनों के तिरस्कार में भी उसकी रक्षा करती रहती थी। उसे वह दिन याद आया, जब एक बार वह बीमार पड़ा था। उसके बचने की कोई आशा न थी; पर न तो पिता को उसकी कुछ चिन्ता थी, न वहनों को। केवल माता थी, जो रात-की-रात उसके सिरहाने बैठती अपनी मधुर, स्नेहमयी बातों से उसकी पीड़ा शान्त करती रही थी। उन दिनों कितनी बार उसने उस देवी को नीरव रात्रि में रोते देखा था। वह स्वयं रोगों से जीर्ण हो रही थी; लेकिन उसकी सेवा-सुध्रूषा में वह अपनी व्यथा को ऐसी भूल गई थी, मानो उसे कोई कष्ट ही नहीं। क्या उसे माता के दर्शन फिर होंगे? वह इसी धोभ और नैराश्य में ससुग्-तट पर चला जाता और घण्टों अनन्त जल-प्रवाह को देखा करता। कई दिनों से उसे घर पर एक पत्र भेजने की इच्छा हो रही थी; किन्तु लड्डा और रत्नानि के कारण वह टालता जाता था। चाञ्चिर, एक दिन उससे न राहा गया। उसने पत्र लिखा और अपने अपराधों के लिए धन्या मँगी। पत्र आदि से अन्त तक भक्ति से भरा हुआ था। अन्त में उसने इन शब्दों

मैं अपनी माता को आश्वासन दिया था—‘माताजी, मैंने बड़े-बड़े उत्पात किये हैं, आप लोग मुझसे तड़प आ गई थीं, मैं उन सारी भूलों के लिए सच्चे हृदय से लज्जित हूँ और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जीता रहा, तो कुछ-न-कुछ कर दिलाऊँगा। तब कदाचित् आपको मुझे अपना पुत्र कहने में संकोच न होगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूँ।’

यह पत्र लिखकर उसने डाक में छोड़ा और उसी दिन से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा; किन्तु एक महीना गुज़र गया और कोई जवाब न आया। अब उसका जी बनड़ाने लगा। जवाब क्यों नहीं आता—कहीं माताजी बीमार तो नहीं हैं? शायद दादा ने क्रोधवश जवाब न लिखा होगा। कोई और विपत्ति तो नहीं आ पड़ी? कैम्प में एक वृक्ष के नीचे कुछ सिपाहियों ने नाजिग्राम की एक मूर्ति रख छोड़ी थी। कुछ श्रद्धालु सैनिक रोज़ उस प्रतिमा पर जल चढ़ाते करते थे। जगतसिंह उनकी हँसी उड़ाया करता; पर आज वह विद्विष्टों की भोंति उस प्रतिमा के सम्मुख जाकर, बड़ी देर तक मस्तक झुकाये बैठा रहा। वह हँसी ध्यानावस्था में बैठा था कि किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। यह दफ़्तर का चपरासी था और उसके नाम की चिट्ठी लेकर आया था। जगतसिंह ने पत्र हाथ में लिया तो उसकी सारी देह काँप उठी। ईश्वर की स्तुति करके उसने लिफ़ाफ़ा खोला और पत्र पढ़ा। लिखा था—‘तुम्हारे दादा की मृत्यु के अभियोग में ५ वर्ष की सज़ा हो गई है। तुम्हारी माता इस शोक में मरणासन्न है। छुट्टी मिले, तो घर चले आओ।’

जगतसिंह ने उसी वक्त कप्तान के पास जाकर कहा—‘हुज़ूर, मेरी माँ बीमार है, मुझे छुट्टी दे दीजिए।’

कप्तान ने कठोर आँसों से देखकर कहा—‘अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।’

‘तो मेरा इन्तका ले लीजिए।’

‘अभी इन्तका भी नहीं लिया जा सकता।’

‘मैं अब यहाँ एक क्षण नहीं रह सकता।’

‘रहना पड़ेगा । तुम लोगों को बहुत जल्द लाम पर जाना पड़ेगा ।’

‘लड़ाई छिड़ गई ? आह, तब मैं घर नहीं जाऊँगा । हम लोग कब तक यहाँ से जायेंगे ?’

‘बहुत जल्द, दो ही चार दिन में ।’

४

चार वर्ष बीत गये । कैप्टन जगतसिंह का-सा जोड़ा उस रेजिमेंट में नहीं है । कठिन श्रमस्थानों में उसका साहस और भी उत्तेजित हो जाता है । जिस सुहिम में सबकी हिम्मतें जवाब दे जाती हैं, उसे सर करना उसी का कान है । इसके और धावे में वह सदैव तन्त्रसे घने रहता है, उसकी त्योरियों पर कभी मैल नहीं आता ; इसके साथ ही वह इतना विनम्र, इतना गम्भीर, इतना ममन्नचित्त है कि सारे अफसर और मातहत उसकी बड़ाई करते हैं । उसका पुनर्जीवन-सा हुआ है । उस पर अफसरों को इतना विश्वास है कि अब वे प्रत्येक विषय में उससे परामर्श करते हैं । जिससे पूर्णतः वह वीर जगतसिंह की विश्वावली लुना देगा—कैसे उसने जर्मनों के मोगलीन में घाग लगाई, कैसे अपने वस्त्रान को मेशीनगनों की मार से निकाला, कैसे अपने एक मातहत लिपिही को कन्धे पर लेकर निकल आया । ऐसा जान पड़ता है, उसे अपने प्राणों का मोह ही नहीं, मानो वह काल को खोजता फिरता है ।

लेकिन निरप रात्रि के समय जब जगतसिंह को अवकाश मिलता है, वह अपनी छोलदारी में घकेले बैठकर घरवालों की याद कर लिया करता है—दो-चार श्वेतु की दूँदें अवश्य गिरा देता है । वह प्रति मास अपने वेतन का बहा भाग घर भेज देता है, और ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता कि वह माता को पत्र न लिखता हो । सबसे बड़ी चिन्ता उसे अपने पिता की है, जो आज उसी के हुक्मों के कारण कारावास की यातना भेज रहे हैं । हाय ! वह कौन दिन होगा कि वह उनके चरणों पर सिर रखकर अपना अपराध धुमा बरायेगा और वह उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देगा ।

५

सवा चार वर्ष बीत गये । सन्ध्या का समय है । नैनी जेल के द्वार पर भीड़ लगी हुई है । कितने ही कैदियों की मीयाद पूरी हो गई है । उन्हें लिवा जाने के लिए उनके घरवाले आये हुए हैं ; किन्तु बूढ़ा भक्तसिंह अपनी श्रेष्ठेरी कोठरी में सिर झुकाये उदांस बैठा हुआ है । उसकी कमर झुककर कमान हो गई है । देह अस्थिपञ्जर-मात्र रह गई है । ऐसा जान पड़ता है, किसी चतुर शिल्पी ने एक अकाल-पीड़ित मनुष्य की मूर्ति बनाकर रख दी है । उसकी मीयाद भी पूरी हो गई है ; लेकिन उसके घर से कोई नहीं आया । कौन आये ? आनेवाला था ही कौन ?

एक वृद्धे ; किंतु हृष्ट-पुष्ट कैदी ने आकर उसका कंधा हिलाया और बोला—कहो भगत, कोई घर से आया ?

भक्तसिंह ने कंपित कंठस्वर से कहा—घर पर है ही कौन ?

‘घर तो चत्तोगे ही ?’

‘मेरे घर कहाँ है ?’

‘तो क्या यहीं पड़े रहोगे ?’

‘अगर यह लोग निकाल न देंगे, तो यहीं पड़ा रहूँगा !’

छात्र चार साल के बाद भक्तसिंह को अपने प्रताड़ित, निर्वासित पुत्र की याद द्या रही थी । जिसके कारण जीवन का सर्वनाश हो गया, आचर-निष्ठ गई, घर बरबाद हो गया, उसकी स्मृति भी उन्हें असह्य थी ; किन्तु आज नैराश्रय और दुःख के अधातु सागर में डूबते हुए उन्होंने उसी तिनके का सहारा लिया । न जाने उस बेचारे की क्या दशा हुई । लाख तुरा है, है तो अपना लटका ही । खानदान की निशानी तो है, मरूँगा तो चार आँगू लो बसायेगा, दो चिक्लू पानी तो देगा । हाय ! मैंने उसके साथ कभी प्रेम का व्यवहार नहीं किया । जरा भी शरारत करना, तो यमदूत को भोंपि उगकी गर्दन पर सवार हो जाता । एक बार रयौर्द में बिना पैर धोये यलो जाने के दंड में मैंने उसे उन्टटा लटका दिया था । कितनी बार केवल ज़ोर में बोलने

पर मैंने उसे तमाचे लगाये । पुत्र-सा रत्न पाकर मैंने उसका आदर न किया । यह उसी का दंड है । जहाँ प्रेम का बंधन शिथिल हो, वहाँ परिवार की रक्षा कैसे हो सकती है ?

६

सबेरा हुआ । आशा का सूर्य निकला । आज उसकी रश्मियाँ कितनी कोमल और मधुर थीं, वायु कितनी सुखद, आकाश कितना मनोहर, वृक्ष कितने हरे-भरे, पक्षियों का कल-रव कितना मीठा । सारी प्रकृति आशा के रंग में रँगी हुई थी ; पर भक्तसिंह के लिए चारों ओर घोर अन्धकार था ।

जेल का अफ़सर आया । कैदी एक पंक्ति में खड़े हुए । अफ़सर एक-एक का नाम लेकर रिहाई का परवाना देने लगा । कैदियों के चेहरे आशा से प्रफुल्लित थे । जिसका नाम आता, वह खुश-खुश अफ़सर के पास जाता, परवाना लेता, झुककर सलाम करता और तब अपने विपत्ति-काल के संगियों से गले मिलकर बाहर निकल जाता । उसके घरवाले दौड़कर उससे लिपट जाते । कोई पैसे लुटा रहा था, कहीं मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं, कहीं जेल के कर्मचारियों को हुनाम दिया जा रहा था । आज नरक के पुतले विनम्रता के देवता बने हुए थे ।

अन्त में, भक्तसिंह का नाम आया । वह सिर झुकाये आहिस्ता-आहिस्ता जेलर के पास गये और उदासीन भाव से परवाना लेकर जेल के द्वार की ओर चले, मानो तामने कोई ससुन्न लहरें मार रहा है । द्वार से बाहर निकलकर वह जमीन पर बैठ गये । कहीं जायँ ?

सदसा उन्होंने एक सैनिक अफ़सर को छोड़े पर सवार जेल की ओर आते देखा । उसकी देह पर झाकी वरही थी, सिर पर कारचोवी साफ़ा । बर्जीस शान से छोड़े पर बैठा हुआ था । उसके पीछे-पीछे एक फ़िटन आ रही थी । जेल के सिपाहियों ने अफ़सर को देखते ही घंटके सँभाली और बाइन में खड़े होकर सलाम किया ।

भक्तसिंह ने मन में कहा—एक भाग्यवान वह है जिसके लिए फिटन आ रही है और एक अभाग्यवान मैं हूँ, जिसका कहीं ठिकाना नहीं।

कौजी अकसर ने इधर-उधर देखा और घोड़े से उतर सीधे भक्तसिंह के सामने आकर सड़ा हो गया।

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंककर उठ खड़े हुए और बोले—अरे ! नेटा जगतसिंह ! जगतसिंह रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा।



इस्तीफ़ा

१

दफ़्तर का चावू एक देज़वान जीव है। मज़दूर को आँखें दिखाओ, तो वह थोरियाँ बदलकर खड़ा हो जावेगा। कुली को एक डॉट बताओ, तो सिर से बोझ फेंककर अपनी राह लेगा। किसी भिन्नारी को हुतकारो, तो वह तुम्हारी ओर गुस्से की निगाह से देखकर चला जायगा। यहाँ तक कि गधा भी कभी-कभी तकलीफ़ पाकर दो-लत्तियाँ काढ़ने लगता है; मगर ये चारों दफ़्तर के चावू को आप चाहे आँखें दिखायें, डॉट बतायें, हुतकारें या ठोकरें मारें, उसके माथे पर बल न आवेगा। उसे अपने विचारों पर जो आधिपत्य होता है, वह शायद किसी संघमी साधु में भी न हो। सन्तोष का पुतला, लम की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी, गरज उसमें तमाम मानवों अच्छाईयों मौजूद होती हैं। खँडहर के भी एक दिन भाग्य जगते हैं। दिवाली के दिन उस पर भी रोशनी होती है, बरसात में उस पर हरियाली छाती है, प्रकृति की दिलचस्पियों में उसका भी हिस्सा है। मगर इस गरीब चावू के नसीब कभी नहीं जागते। इसको धँधेरी तकदीर में रोशनी का जलवा कभी दिखाई नहीं देता। इसके पीले चेहरे पर कभी नुसकराहट की रोशनी नज़र नहीं आती। इसके लिए सूखा-सावन है! कभी हरा भादों नहीं। लाजा फतह-एन ऐसे ही एक जीव थे।

कहते हैं मनुष्य पर उसके नाम का भी कुछ असर पड़ता है। फतहचन्द की दगा में यह बात यथार्थ सिद्ध न हो सकी। यदि उन्हें 'हारचन्द' कहा जाय, तो कदाचित् यह अशुक्ति न होगी। दफ़्तर में हार, जिन्दगी में हार मिश्रों में हार, जीवन में उनके लिए चारों ओर हार और निराशाएँ ही थीं। एतका एक भी नहीं लड़कियाँ तीन, भाई एक भी नहीं मौजाइयाँ दो, गाँठ में

भक्तसिंह ने मन में कहा—एक भाग्यवान वह है जिसके लिए फिटन आ रही है और एक अभाग्यवान मैं हूँ, जिसका कहीं ठिकाना नहीं।

फौजी अफसर ने इधर-उधर देखा और घोड़े से उतर सीधे भक्तसिंह के सामने आकर खड़ा हो गया।

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंककर उठ खड़े हुए और बोले—अरे ! बेटा जगतसिंह ! जगतसिंह रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा।



इस्तीफ़ा

१

दफ़्तर का बाबू एक ब्रेज़वान जीव है। मज़दूर को आँखें दिखाओ, तो वह थोरियाँ बढ़लकर खड़ा हो जावेगा। कुली को एक डॉट बताओ, तो सिर से बोझ फेंककर अपनी राह लेगा। किसी भित्तारी को हुतकारो, तो वह तुम्हारी घोर गुस्से की निगाह से देखकर चला जायगा। वहाँ तक कि गधा भी कभी-कभी तकलीफ़ पाकर दो-लतियाँ झाड़ने लगता है; मगर ब्रेचारे दफ़्तर के बाबू को आप चाहे आँखें दिखायें, डॉट बतायें, हुतकारें या ठोकरें मारें, उसके साथे पर बल न आवेगा। उसे अपने विचारों पर जो आधिपत्य होता है, वह शायद किसी संयमी साधु में भी न हो। सन्तोष का पुतला, सब की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी, गरज़ उसमें तमाम मानवी अच्चाइयों मौजूद होती हैं। खँडहर के भी एक दिन भाग्य जगते हैं। दिवाली के दिन उस पर भी रोशनी होती है, बरसात में उस पर हरियाली छाती है, प्रकृति की दिलचरिपयों में उसका भी हिस्सा है। मगर इस गरीब बाबू के नसीब कभी नहीं जागते। हुसको अंधेरी तकदीर में रोशनी का जलवा कभी दिखाई नहीं देता। इसके पीले चेहरे पर कभी सुसकराहट की रोशनी नज़र नहीं आती। इसके लिए ख़ूब-सावन है ! कभी हरा भादों नहीं। लाला फ़तह-उद-दौलत ही एक जीव थे।

कहते हैं महफ़्फ़ पर उसके नाम का भी कुछ असर पड़ता है। फ़तह-उद-दौलत की दशा में वह बात यथार्थ सिद्ध न हो सकी। यदि उन्हें 'हारउद' कहा जाय, तो कदाचित् यह अस्त्युक्ति न होगी। दफ़्तर में हार, जिन्दगी में हार सिद्धों में हार, जीवन में उनके लिए चारों घोर हार और निराशाएँ ही थीं। हरका एक भी नहीं बढ़कियाँ तीन, भाई एक भी नहीं मौज़ाइयाँ दो, गाँठ में

कौड़ो नहीं, मगर दिल में दया और मुरब्बत, सच्चा मित्र एक भी नहीं— जिससे मित्रता हुई उसने धोखा दिया, इस पर तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं— बत्तीस साल की अवस्था में बाल स्रिचकी हो गये थे। आँसों में ज्योति नहीं, हाज़मा चौपट, चेहरा पीला, गाल पिचके, कमर झुकी हुई, न दिल में हिम्मत न कलेजे में ताकत। नौ बजे दफ़्तर जाते और छः बजे शाम की लौटकर घर आते। फिर घर से बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती। दुनिया में क्या होता है, इसकी उन्हें बिल्कुल ख़बर न थी। उनकी दुनिया, लोक-परलोक जो कुछ था दफ़्तर था। नौकरी की खैर मनाते और ज़िन्दगी के दिन पूरे करते थे। न धर्म से वास्ता था, न दीन से नाता। न कोई मनोरञ्जन था, न खेल। ताश खेले हुए भी शायद एक मुद्दत गुज़र गई थी।

२

जाइँ के दिन थे। आकाश पर कुछ-कुछ बादल थे। फ़उहचन्द साढ़े पाँच बजे दफ़्तर से लौटे तो चिराग जल गये थे। दफ़्तर से आकर वह किसी से कुछ न बोलते। चुपके से चारपाई पर लेट जाते और पन्द्रह-बीस मिनट तक बिना हिले-डुले पड़े रहते। तब कहीं जाकर उनके मुँह से आवाज़ निकलती। आज भी प्रतिदिन की तरह वे चुपचाप पड़े थे कि एक ही मिनट में बाहर से किसी ने पुकारा। छोटी लड़की ने जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि दफ़्तर का चपरासी है। शारदा पति के मुँह-हाथ धोने के लिए लोटा-ग्लास माँज रही थी। बोली—उससे कह दे, क्या काम है, अभी तो दफ़्तर से आये ही हैं, और अभी फिर बुलावा आ गया ?

चपरासी ने कहा—साहब ने कहा है, अभी बुला लाओ। कोई बड़ा ज़रूरी काम है।

फ़तहचन्द की झामोशी टूट गई। उन्होंने सिर उठाकर पूछा—क्या बात है ?

शारदा—कोई नहीं, दफ़्तर का चपरासी है।

ऋतहर्चंद ने सहमकर कहा—दफ्तर का चपरासी ! क्या साहब ने बुलाया है ?

शारदा—हाँ, कहता है, साहब बुला रहे हैं। यह कैसा साहब है तुम्हारा, जब देखो बुलाया करता है। सवेरे के गये-गये, अभी मकान को लौटे हो फिर भी बुलावा आ गया ? कह दो नहीं आते—अपनी नौकरी ही लेगा या और कुछ !

ऋतहर्चंद ने सँभलकर कहा—ज़रा सुन लूँ, किस लिये बुलाया है। मैंने तो सब काम ख़तम कर दिया था, अभी आता हूँ।

शारदा—ज़रा जल-पान तो करते जाओ, चपरासी से बातें करने लगोगे, तो तुम्हें अन्दर आने की याद भी न रहेगी।

यह कहकर वह एक प्याली में धोही-सी दालमोट और सेब लाई। ऋतहर्चंद उठकर खड़े हो गये ; किन्तु खाने की चीज़ें देखकर चारपाई पर बैठ गये और प्याली की ओर चाव से देखकर डरते हुए बोले—लड़कियों को दे दिया है न ?

शारदा ने आँखें चढ़ाकर कहा—हाँ-हाँ, दे दिया है, तुम तो खाओ !

हस्तने में छोटी लड़की आकर सामने खड़ी हो गई। शारदा ने उसकी ओर प्रोप से देखकर कहा—तू क्या आकर सिर पर सवार हो गई, जा बाहर खेल !

ऋतहर्चंद—रहने दो, क्यों डौंटती हो। यहाँ आओ चुन्नी, यह लो दालमोट ले जाओ !

चुन्नी माँ की ओर देखकर उरती हुई बाहर भाग गई !

ऋतहर्चंद ने कहा—श्यों बेचारी को भगा दिया। दो-चार दाने दे देता, तो रुझा हो जाती।

शारदा—हस्तमें है ही कितना कि सबको डौंटते फिरोगे। इसे देते तो पाकी दोनों न आ जाती। किस-किस को देते ?

हस्तने में चपरासी ने फिर इकरा—बायूजी हमें बरी देर हो रही है।

शारदा—कह क्यों नहीं देते कि इस वक्त न आयेंगे ।

फतहचंद—ऐसा कैसे कह दूँ भाई, रोजी का मामला है !

शारदा—तो क्या प्राण देकर काम करोगे ? सूरत नहीं देखते अपनी ।
मालूम होता है छः महीने के बीमार हो ।

फतहचंद ने जल्दी-जल्दी ढालमोट की दो-तीन फंक्रियाँ लगाईं, एक ग्लास पानी पिया और बाहर की तरफ दौड़े । शारदा पान बनाती ही रह गई ।

चपरासी ने कहा—बावजू ! आपने बड़ी देर कर दी । अब ज़रा लपके चलिए, नहीं तो जाते ही डॉट बतावेगा ।

फतहचंद ने दो कदम दौड़कर कहा—चलेंगे तो भाई आदमी ही की तरह, चाहे डॉट बतावे या दाँत दिखाये । हमसे दौड़ा तो नहीं जाता । बँगले ही पर है न ?

चपरासी—भला वह दफ़्तर क्यों आने लगा । बादशाह है कि दिव्लगी !

चपरासी तेज़ चलने का आदी था । बेचारे बाबू फतहचंद धीरे-धीरे जाते थे । थोड़ी ही दूर चलकर हॉफ उठे । मगर मर्द तो थे ही, यह कैसे कहते कि भाई ज़रा और धीरे चलो । हिम्मत करके कदम उठाते जाते थे, यहाँ तक कि जाँवों में दर्द होने लगा और आधा रास्ता ख़तम होते-होते पैरों ने उठने से इनकार कर दिया । सारा शरीर पसीने में तर हो गया । सिर में चक्कर आ गया । आँखों के सामने तित्तलियाँ उड़ने लगीं ।

चपरासी ने ललकारा—ज़रा कदम बढ़ाये चलो बाबू !

फतहचंद बड़ी मुश्किल से बोले—तुम जाओ, मैं आता हूँ ।

वे सड़क के किनारे पटरी पर बैठ गये और सिर को दोनों हाथों से धामकर दम मारने लगे । चपरासी ने इनकी यह दशा देखी, तो आगे बढ़ा । फतहचंद डरे कि यह शैतान जाकर न-जाने साहब से क्या कह दे, तो गुज़ब ही हो जायगा । ज़मीन पर हाथ टेककर उठे और फिर चले । मगर कमज़ोरी से शरीर हॉफ रहा था । इस समय कोई चर्चा भी उन्हें ज़मीन पर गिरा सकता था । बेचारे किसी तरह गिरते-पड़ते साहब के बँगले पर पहुँचे । साहब

बंगले पर टहल रहे थे। बार-बार फाटक की तरफ देखते थे और किसी को आते न देखकर मन-ही-मन में भल्लाते थे।

चपरासी को देखते ही आँखें निकालकर बोले—इतनी देर कहाँ था ?

चपरासी ने वरामदे की सीढ़ी पर खड़े-खड़े कहा—हुजूर ! जब वह आवें तब तो, मैं तो दौड़ा चला आ रहा हूँ।

साहब ने पैर पटककर कहा—बाबू क्या बोला ?

चपरासी—आ रहे हैं हुजूर, घण्टा-भर में तो घर में से निकले।

इतने में फतहचंद अहाते के तार के अंदर से निकलकर वहाँ आ-पहुँचे और साहब को सिर झुकाकर सलाम किया।

साहब ने कड़ककर कहा—अब तक कहाँ था ?

फतहचंद ने साहब का तमतमाता चेहरा देखा, तो उनका खून सूख गया। बोले—हुजूर ! अभी-अभी तो दरवाज़े से गया हूँ, ज्यों ही चपरासी ने आवाज़ दी, हाज़िर हुआ।

साहब—भूट दोलता है, भूट दोलता है, हम घंटे-भर से खड़ा है।

फतहचंद—हुजूर, मैं भूट नहीं दोलता। आने में जितनी देर हो गई हो; अगर घर से चलने में मुझे बिल्कुल देर नहीं हुई।

साहब ने हाथ की छड़ी घुमाकर कहा—सुप रह, सुधर, हम घंटा-भर से खड़ा है, अपना काम पकड़ो !

फतहचंद ने खून का घूँट पीकर कहा—हुजूर, मुझे दस साल काम करते हो गये, कभी.....।

साहब—सुप रह, सुधर, हम कटता है अपना काम पकड़ो !

फतहचंद—जब मैंने कोई सुधर किया हो ?

साहब—चपरासी ! हम सुधर का काम पकड़ो !

चपरासी ने दबी इयाज से कहा—हुजूर, वह भी मेरे इफ्तार हैं, मैं इसका काम कैसे पकड़ूँ !

साहब—हम कहता है इसका कान पकड़ो, नहीं हम तुमको हंटरो से मारेगा ।

चपरासी—हुजूर, मैं यहाँ नौकरी करने आया हूँ, मार खाने नहीं । मैं भी इज्जतदार आदमी हूँ । हुजूर अपनी नौकरी ले लें । आप जो हुकुम दें वह बजा लाने को हाज़िर हूँ ; लेकिन किसी की इज्जत नहीं बिगाड़ सकता । नौकरी तो चार दिन की है । चार दिन के लिए क्यों ज़माने-भर से बिगाड़ करें ?

साहब अब क्रोध को न बरदाश्त कर सके । हंटर लेकर दौड़े । चपरासी ने देखा यहाँ खड़े रहने में खैरियत नहीं है, तो भाग खड़ा हुआ । फतहचन्द अभी तक चुपचाप खड़े थे । साहब चपरासी को न पाकर उनके पास आया और उनके दोनों कान पकड़कर हिल्ला दिया । बोला—तुम सुन्नर, गुस्ताखी करता है ? जाकर आफिस से फ़ाइल लाओ ।

फतहचन्द ने कान सहलाते हुए कहा—कौन-सा फ़ाइल लाऊँ हुजूर !

साहब—फ़ाइल—फ़ाइल और कौन-सा फ़ाइल ? तुम बहरा है, सुनता नहीं, हम फ़ाइल माँगता है !

फ़तहचन्द ने किसी तरह दिलेर होकर कहा—आप कौन-सा फ़ाइल माँगते हैं ?

साहब—वही फ़ाइल जो हम माँगता है । वही फ़ाइल लाओ । अभी लाओ !

बेचारे फ़तहचन्द को अब और कुछ पूछने की हिम्मत न हुई । साइच वहादुर एक तो यों ही तेज़ मिज़ाज थे, इस पर हुक्मत का घमंड और सबसे घड़कर शराब का नशा । हंटर लेकर पिल पड़ते, तो बेचारे क्या कर लेते । चुपके से दरवाज़े की तरफ़ चल पड़े ।

साहब ने कहा—दौड़कर जाओ—दौड़ो ।

फ़तहचन्द ने कहा—हुजूर, मुझसे दौड़ा नहीं जाता ।

साहब—ओ तुम बहुत लुस्त हो गया है। हम तुमको झोड़ना सिखायेगा !
 दौड़ो (पीछे से धक्का देकर) तुम अब भी नहीं दौड़ोगे ?

यह कहकर साहब हंटर लेने चले। फ़तहचंद दरतार के बावू होने पर भी अनुग्रह ही थे। यदि वह बलवान होते तो उस बदमाश का खून पी जाते। अगर उनके पास कोई हथियार होता, तो उस पर ज़रूर चला देते; लेकिन उस हालत में तो मार खाना ही उनकी तज़दीर में लिखा था। वे बेतहाशा आगे घौर काटक से बाहर निकलकर सड़क पर आ गये।

३

दूसरे दिन फ़तहचंद दरतार न गये। जाकर करते ही क्या ! साहब ने पाइल का नाम तक न बताया। शायद नशा में भूल गया। धीरे-धीरे घर की ओर चले। मगर इस बेहज़ारी ने पैरों में वेदियों-सी ढाल दी थीं। माना कि वह नारीरिक बल में साहब से कम थे, उनके हाथ में कोई चीज़ भी न थी; लेकिन क्या वह उनकी पातों का जवाब न दे सकते ? उनके पैरों में जूते तो थे। क्या वह जूते से काम न ले सकते थे ? फिर क्यों उन्होंने इतनी इत्कत परदाश की ?

होता, कुछ कसरत करते रहते, लकड़ी चलाना जानते होते, तो क्या इस शैतान की इतनी हिम्मत होती कि वह उनका कान पकड़ता ! उसकी आँखें निकाल लेते । कम-से कम इन्हें घर से एक छुरी लेकर चलना था और न होता दो-चार हाथ जमाते ही—पीछे देखा जाता, जेलखाना ही तो होता था और कुछ !

वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों उनकी तत्रोयत अपनी कायरता और बोधेपन पर और भी झुल्लाती थी । अगर वह उच्चकर उसके दो-चार थपड़ लगा देते, तो क्या होता—यही न कि साहब के खानसामे, चेहरे, सब उन पर पिल पड़ते और मारते-मारते वेदम कर देते । बाल-बच्चों के सिर पर जो कुछ पड़ती—पड़ती । साहब को इतना तो मालूम हो जाता कि किसी गरीब को बेगुनाह ज़लील करना आसान नहीं । आखिर आज मैं मर जाऊँ तो क्या हो ? तब कौन मेरे बच्चों का पालन करेगा ! तब उनके सिर जो कुछ पड़ेगी वह आज ही पड़ जाती, तो क्या हर्ज़ था ।

इस अन्तिम दिवार ने फ़तहचन्द के हृदय में इतना जोश भर दिया कि वह लौट पड़े और साहब से ज़िल्लत का बदला लेने के लिए दो-चार ढ़दम चले ; मगर फिर सज़ा आया, आखिर जो कुछ ज़िल्लत होनी थी, वह तो हो ही ली । कौन जाने दँगला पर हो या क्लब चला गया हो । उसी सनय उन्हें शारदा की बेकसी और बच्चों का विना बाप के हो जाने का सज़ा भी था गया । फिर लौटे और घर चले ।

४

घर में जाते ही शारदा ने पूछा—किस लिए बुलाया था, चढ़ी देर हो गई ? फ़तहचन्द ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—नशे की सनक थी और क्या ? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, ज़लील किया, बस यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की । निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा ।

शारदा ने गुस्से में आकर कहा—तुमने एक जूता उतारकर दिया नहीं सुधर को ?

फ़तहचंद—चपरासी बहुत शरीफ है। उसने साफ कह दिया...हुजूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्जत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। यह उसी वक्त सलाम करके चला गया।

शारदा—यह बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा ?

फ़तहचंद—फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी खूब सुनाई। वह छड़ी लेकर दौड़ा—मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छड़ियाँ जमाईं—मैंने भी कई जूते लगाये।

शारदा ने खुश होकर कहा—सच ? इतना-सा मुँह हो गया होगा उसका।

फ़तहचंद—चेहरे पर भादू-सी फिरी हुई थी।

शारदा—बड़ा अच्छा किया तुमने, और मारना चाहिए था। मैं होती, तो बिना जान लिये न छोड़ती।

फ़तहचंद—मार तो आया हूँ ; लेकिन अब तैरियत नहीं है। देखो, क्या नतीजा होता है ? नौकरी तो जायगी ही, शायद सज़ा भी काटनी पड़े !

शारदा—सज़ा क्यों काटनी पड़ेगी। क्या कोई हुंसाक्र करनेवाला नहीं है ? उसने क्यों गालियाँ दीं, क्यों छड़ी जमाई ?

फ़तहचंद—उसके सामने मेरी दौन सुनेगा। अदालत भी उसी की तरफ़ हो जायगी।

शारदा—हो जायगी, हो जाय ; मगर देख लेना अब किसी साहब की यह हिम्मत न होगी कि किसी बाद को गालियाँ दे बैठे। उन्हें चाहिए था कि क्यों ही उसके मुँह से गालियाँ निकलीं, लफ़्फ़कर एक जूता रसाद करते।

फ़तहचंद—तो फिर इस वक्त ज़िन्दगी लौट भी न सकता। फिर मुझे योही मार देना।

शारदा—देखी जाती।

फ़तहचंद ने सुरसरकर कहा—फिर तुम लोग क्यों जाती ?

शारदा—जहाँ ईश्वर की मरज़ी होती। आदमी के लिए सबसे बड़ी

चीज़ इज्जत है। इज्जत गँवाकर बाल-बच्चों की परवरिश नहीं की जाती। तुम उस शैतान को मारकर आये हो, मैं ग़रूर से फूको नहीं समझती। मार खाकर आते, तो शायद मैं तुम्हारी सुरत से भी घृणा करती। यों ज़वान से चाहे कुछ न कहती; मगर दिल से तुम्हारी इज्जत जाती रहती। अब जो कुछ सिर पर आयेगी, खुशी से भेल लूँगी...। कहाँ जाते हो, सुनो-सुनो, कहाँ जाते हो।

फ़तहचंद दीवान होकर जोश में घर से निकल पड़े। शारदा पुकारती रह गई। वह फिर साहब के बँगले की तरफ़ जा रहे थे। दर से सहमे हुए नहीं; बल्कि ग़रूर से गर्दन उठाए हुए। पक्का इरादा उनके चेहरे से झलक रहा था। उनके पैरों में वह कमज़ोरी, आँखों में वह बेकसी न थी। उनकी काया-पलट-सी हो गई। वह कमज़ोर बदन, पीला सुपड़ा, दुबले बदनवाला, दज़्जर के बाबू की जगह अब मर्दाना-चेहरा, हिम्मत से भरा हुआ, मज़बूत गठा हुआ जवान था। उन्होंने पहले एक दोस्त के घर जाकर उसका डंडा लिया और अरुड़ते हुए साहब के बँगले पर जा पहुँचे।

५

इस वक्त नौ बजे थे। साहब खाने की मेज़ पर थे। मगर फ़तहचंद ने आज उनके मेज़ पर से उठ जाने का इन्तज़ार न किया। खानखाना कमरे से बाहर निकला और वह चिक उठाकर अन्दर गया। कमरा प्रकाश से जगमगा रहा था। ज़मीन पर ऐसी कालीन बिछी हुई थी, जैसी फ़तहचंद की शादी में नहीं बिछी होगी। साहब बहादुर ने उसकी तरफ़ क्रोधित दृष्टि से देखकर कहा—तुम क्यों आया, बाहर जाओ, क्यों अन्दर चला आया ?

फ़तहचंद ने सड़े-सड़े डंडा सँभालकर कहा—तुमने मुझसे अभी फाटल माँगा था, वही फाटल लेकर आया हूँ। खाना खा लो, तो दिगाऊँ। तब तक मैं बैठा हूँ। इतमीनान से खाओ, शायद यह तुम्हारा आखिरी खाना होगा। इसी कारण खूब पेट-भर खा लो।

साहब सन्नटे में आ गये। फ़तहचंद की तरफ़ दर और क्रोध की दृष्टि

से देखकर कॉप उठे। फतहचंद के चेहरे पर पक्का हुरादा झलक रहा था। साहब समझ गये, यह मनुष्य इस समय मरने-मारने के लिए तैयार होकर आया है। ताकत में फतहचंद उनके पासंग भी नहीं था। लेकिन यह निश्चय था कि वह ईंट का जवान पत्थर से नहीं, बल्कि लोहे से देने को तैयार है। यदि वह फतहचंद को ठुरा-भला कहते हैं, तो क्या आश्चर्य है कि वह डंडा लेकर पिल पड़े। हाथा-पाई करने में यद्यपि उन्हें जीतने में ज़रा भी सन्देह नहीं था; लेकिन बैठे-बिठाये उठे खाना भी तो कोई दुखिमागी नहीं है। कुत्ते को आप उठे से मारिए, टुकड़ाएँ, जो चाहे खीजिए; मगर उसी समय तक, जब तक वह गुराँजा नहीं। एक बार गुराँकर ढाँड़ पड़े, तो फिर देखें आपकी हिम्मत कहीं जाती है? यही हाल उस वक्त साहब महादुर का था। जब तक चक्कीन था कि फतहचंद कुत्तेकी, पुरानी, हँटर, टोकर मय कुछ सामोशी से लए लेगा, तब तक आप शेर थे; जब वह खोरियों बदले, डंडा सँभाले, दिल्ली की तरह घात लगाये लड़ा है। जवान से कोई बड़ा शब्द निकला और उसने डंडा चलाया। वह अधिक-से-अधिक उसे बरसावन कर सकते हैं। मगर मारते हैं, तो मार खाने का भी डर। उस पर फौजदारी में मुकदमा दायर हो जाय या अद्वैता—माना कि वह अपने प्रभाव और ताकत से अन्त में फतहचंद को डेल में उलटा होने; परन्तु परेशानी और बदनामी ने किसी तरह ये सब संभवते थे। एक दुखिमान, और दूरन्देह आदमी की तरह उन्होंने यह कहा—सोहो, हम समझ गया, आप हमसे नाराज़ हैं। हमने क्या आपकी कुछ कहा है, आप क्यों हमसे नाराज़ हैं?

फतहचंद ने हनकर कहा—कुत्ते ने सभी आप डंडा पहले मेरे कान पकड़े थे और कुत्ते सैकड़ों लल-जल्लत पाते कहीं थीं। क्या कुत्ता जल्दी भूल गये?

साहब—हैं तो आपका कान पकड़ा, धम-टा-हा-हा-हा! मैंने आपका कान पकड़ा—आ हाहा-हा! क्या लड़ाक है? क्या मैं पागल हूँ या दीवाना?

फतहचंद—तो क्या मैं भूट भोज रहा हूँ? चरामा मवाह है। मारते और-मार भी देख नो थे।

साहब—कब का बात है ?

फ़तहचंद—अभी, अभी कोई आध बरगटा हुआ, आपने मुझे बुलवाया था और बिना कारण मेरे कान पकड़े और धक्के दिये थे ।

साहब—ओ बाबूजी, उस वक्त हम नशा में था। वेहरा ने हमको बहुत दे दिया था। हमको कुछ खबर नहीं, क्या हुआ माई गाड, हमको कुछ खबर नहीं ।

फ़तहचंद—नशा में अगर तुमने मुझे गोली मार दी होती, तो क्या मैं मर न जाता ? अगर तुम्हें नशा था और नशा में सब कुछ सुआफ़ है, तो मैं भी नशा में हूँ । सुनो मेरा फैसला, या तो अपने कान पकड़ो कि फिर कभी किसी भले आदमी के संग ऐसा बर्ताव न करोगे ; या मैं आकर तुम्हारे कान पकड़ूँगा । समझ गये कि नहीं ? इधर-उधर हिलो नहीं, तुमने जगह छोड़ी और मैंने डंडा चलाया । फिर खोपड़ी टूट जाय, तो मेरी झत्ता नहीं । मैं जो कुछ कहता हूँ वह करते चलो, पकड़ो कान !

साहब ने वनावटी हँसी हँसकर कहा—वेल बाबूजी, आप बहुत दिल्लगी करता है । अगर हमने आपको बुरा बात कहा है, तो हम आपसे माफ़ी माँगता है !

फ़तहचंद—(डंडा तौलकर) नहीं, कान पकड़ो !

साहब आसानी से इतना ज़िल्लत न सह सके । लपककर उठे और चाहा कि फ़तहचंद के हाथ से लकड़ी छीन लें ; लेकिन फ़तहचंद गाफ़िल न था । साहब मेज़ पर से उठने भी न पाये थे कि उसने डंडे का भरपूर और तुल्ला हुआ हाथ चलाया । साहब तो नंगे सिर थे ही, चोट सिर पर पड़ गई । खोपड़ी भन्ना गई । एक मिनट तक सिर को पकड़े रहने के बाद बोले—हम तुमकेश्वरज्ञास्त कर देगा ।

फ़तहचंद—इसकी मुझे परवाह नहीं, मगर आज मैं तुमसे बिना कान पकड़ाये नहीं जाऊँगा । कान पकड़कर वादा करो कि फिर किसी भले आदमी के साथ ऐसी वैश्रदबी न करोगे, नहीं तो मेरा दूसरा हाथ पड़ा ही चाहता है !

यह कहकर फ़तहचंद ने फिर डंडा उठाया । साहब को अभी तक पहली

चोट न भूली थी। अगर कहीं यह दूसरा हाथ पड़ गया, तो शायद खोपड़ी खुल जाय। कान पर हाथ रखकर बोले—अब आप सुश हुआ ?

‘फिर तो कभी किसी को गाली न दोगे ?’

‘कभी नहीं।’

‘अगर फिर कभी ऐसा किया, तो समझ लेना मैं कहीं बहुत दूर नहीं हूँ।’

‘अब किसी को गाली न देना।’

‘अच्छी बात है अब मैं जाता हूँ, आज से मेरा इस्तीफ़ा है। मैं कल इस्तीफ़ा में यह लिखकर भेजूँगा कि तुमने मुझे गालियाँ दीं ; इसलिए मैं नौकरी नहीं करना चाहता, समझ गये ?’

साहब—आप इस्तीफ़ा क्यों देता है। हम तो परस्वास्त नहीं करता।

प्रतदचन्द्र—अब तुम जैसे पाली खादसी की भाताहती न करूँगा।

यह कहते हुए प्रतदचन्द्र कमरे से बाहर निकले और बड़े इतमिनान से घर चले। आज उन्हें सच्ची विजय की प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उन्हें ऐसी सुशी कभी नहीं प्राप्त हुई थी। यही उनके जीवन की पहली जीत थी।

ज़िहाद

१

बहुत पुरानी बात है। हिन्दुओं का एक काफ़िला अपने धर्म की रक्षा के लिए पश्चिमोत्तर के पर्वत-प्रदेश से भागा चला आ रहा था। मुद्दतों से उस प्रान्त से हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ रहते चले आये थे। धार्मिक द्वेष का नाम न था। पठानों के ज़िरगे हमेशा लड़ते रहते थे। उनकी तलवारों पर कभी जङ्गल लगने पाता था। बात-बात पर उनके दिल संगठित हो जाते थे। शासन की कोई व्यवस्था न थी। हर एक ज़िरगे और कबीले की व्यवस्था अलग थी। आपस के झगड़ों को निपटाने का भी तलवार के सिद्धा और कोई साधन न था। जान का बदला जान था, खून का बदला खून; इस नियम में कोई अपवाद न था। यही उनका धर्म था, वही ईमान; मगर उस भीषण रक्त-पात में भी हिन्दू-परिवार शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे; पर एक महाने से देश की हालत बदल गई है। एक मुल्ला ने न-जाने कहाँ से आकर धनपढ़ धर्मशून्य पठानों में धर्म का भाव जागृत कर दिया है। उसकी वाणी में कोई ऐसी मोहिनी है कि बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष खिंचे चले जाते हैं। वह शेरों की तरह गरजकर कहता है—खुदा ने तुम्हें इसलिए पैदा किया है कि दुनिया को इस्लाम की रोशनी से रोशन कर दो, दुनिया से कुफ़्र का निशान मिटा दो। एक काफ़िर के दिल को इस्लाम के उजाले से रोशन कर देने का सचाव सारी उम्र के रोज़े, नमाज़ और ज़कात से कहीं ज़्यादा है, जन्नत की दूरी तुम्हारी बलाएँ लेंगी और क़रिश्ते तुम्हारे क़दमों की खाक माथे पर मलेंगे, खुदा तुम्हारी पेशानी पर बोसे देगा। और सारी जन्तु यह आवाज़ सुनकर मज़हब के नारों से मतवाली हो जाती है। इसी धार्मिक उत्तेजना ने कुफ़्र और इस्लाम का भेद उत्पन्न कर दिया है। प्रत्येक पठान जन्नत का सुख भोगने के लिए

अधीर हो उठा है। उन्हीं हिन्दुओं पर जो सदियों से शान्ति के साथ रहते थे, हमले होने लगे हैं। कहीं उनके मन्दिर धाये जाते हैं, कहीं उनके देवताओं को गालियाँ दी जाती हैं। कहीं उन्हीं जगदस्ती इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। हिन्दू संख्या में कम हैं, अल्पवृत्ति हैं, बिखरे हुए हैं, इन नई परिस्थिति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं। उनके हाथ-पाँव फूले हुए हैं, कितने ही तो भयभीत जमाजथा छोड़कर भाग पड़े हुए हैं, कुछ एक आँधी के शान्त हो जाने का अवसर देख रहे हैं। यह काशिका भी उन्हीं भागनेवालों में था। दोपहर का समय था। घासमान से आग बरस रही थी। पहाड़ों से उवाता-सी निकल रही थी। कुछ का वहीं नाम न था। ये लोग शन-पथ से दौड़े हुए, पेशीदा औबट रास्तों से चले आ रहे थे। पग-पग पर परड़ लिये जाने का खटका लगा हुआ था। यहाँ तक कि भूत, प्यास और ताप से थक होकर अन्त की लोग एक उभरी हुई शिला की छाँह में विश्राम करने लगे। सड़मा कुछ दूर पर एक छिन्ना गज़र आया। वहीं ठेरे डाल दिये। सब लगा हुआ था कि जहाजियाँ का कोई एक पीछे से न आ रहा हो। वा बुक्यों ने बंदूकें भरकर पन्धे पर रखी और चारों तरफ़ गदक करने लगे। दूधे कन्दल विद्याकर कमर खीपी करने लगे। सिरों बालकों को चौद से उतारकर नाथे का पानीया पीछेने और सिरों हुए देसों को संभालने लगे। सभी के चेहरे सुरभाये हुए थे। सभी चिन्ता और भय से ज़रत हो रहे थे, जहाँ तक कि बच्चे भी जोर से न रोते थे।

दोनों युवकों में एक लम्बा, गठीला, स्वरवान् है। उसकी आँखों से अविश्राम की रेखाएँ-सी निकल रही हैं, जिनसे वह अपने सामने किसी की एकीकत नहीं मनासता, जहाँ उसकी एक-एक गति पर आकाश के देवता खन-खीए कर रहे हैं। दूसरा छोटे बड़ का, हुबला पतला, सलहीन-सा आदती है, जिसके चेहरे से हीनता भवत रही है, जहाँ उसके लिए संसार में कोई आशा नहीं, जहाँ वह दीवत की भक्ति से-सेकर जीवन व्यतीत करने ही के लिए बन्धन मना है। अन्ततः सब धर्मदार है, इसका ज्ञानोन्मुख।

धर्मोन्मुख ने परब्रह्म की ज्ञानोन्मुख पर विद्याकर एक बहू न पर बैठते ह

कहा—तुमने अपने लिए क्या सोचा ? कोई लाख-सवा लाख की सम्पत्ति रही होगी तुम्हारी ?

ख़ज़ाँचन्द ने उदासीन भाव से उत्तर दिया—लाख-सवा लाख की तो नहीं, हाँ पचास-साठ हजार तो नक़द ही थे ।

‘तो अब क्या करोगे ?’

‘जो कुछ सिर पर आवेगा झेलूंगा । रावलपिण्डी में दो-चार सम्बन्धी हैं, शायद कुछ मदद करें । तुमने क्या सोचा है ?’

‘सुभे क्या ग़म ! अपने दोनों हाथ अपने साथ हैं । वहाँ भी इन्हीं का सहारा था, आगे भी इन्हीं का सहारा है ।’

‘आज और कुशल से बीत जाय, तो फिर कोई भय नहीं ।’

‘मैं तो मना रहा हूँ कि एकध शिकार मिल जाय । एक दरजन भी आ जायँ, तो भूनकर रख दूँ ।’

इतने में चट्टानों के नीचे से एक युवती हाथ में लोटा और डोर लिये निकली और सामने कुँए की ओर चली । प्रभात की सुनहरी, मधुर अरुणिमा मूर्तिमान् हो गई थी ।

दोनों युवक उसकी ओर बढ़े ; लेकिन ख़ज़ाँचन्द तो दो-चार कदम चलकर रुक गया, धर्मदास ने युवती के हाथ से लोटा-डोर ले लिया और ख़ज़ाँचन्द की ओर सगर्व नेत्रों से ताकत हुआ कुँए की ओर चला, ख़ज़ाँचन्द ने फिर बन्दूक सँभाली और अपनी भँप मिटाने के लिए आकाश की ओर ताकने लगा । इसी तरह वह कितनी ही बार धर्मदास के हाथों पराजित हो चुका था । शायद उसे इसका अभ्यास हो गया था । अब इसमें लेश-मात्र भी सन्देह न था कि श्यामा का प्रेमपात्र धर्मदास है । ख़ज़ाँचन्द की सारी सम्पत्ति धर्मदास के रूप-वैभव के आगे तुच्छ थी । परोक्ष ही नहीं, प्रत्यक्ष रूप से भी श्यामा कई बार ख़ज़ाँचन्द को हताश कर चुकी थी ; पर वह अभागा निराश होकर भी न-जाने क्यों उस पर प्राण देता था । तीनों एक ही बस्ती के रहनेवाले, एक साथ खेलनेवाले थे । श्यामा के माता-पिता पहले ही मर

बुके थे। उसकी बुझा ने उसका पालन-पोषण किया था। अब भी वह बुझा ही के साथ रहती थी। उसकी अभिलाषा थी कि ख़ज्जाँचन्द उसका दामाद हो, श्यामा सुख से रहे और उसे भी जीवन के अन्तिम दिनों के लिए कुछ सहारा हो जाय; लेकिन श्यामा धर्मदास पर रीझी हुई थी। उसे क्या ख़बर थी कि जिस व्यक्ति को वह पैरों से ठुकरा रही है, वही उसका एक मात्र अवलम्ब है। ख़ज्जाँचन्द ही वृद्धा का सुनीम, ख़ज्जाँची कारिन्दा सब कुछ था, और यह जानते हुए भी कि श्यामा उसे इस जीवन में नहीं मिल सकती। उसके जन का यह उपयोग न होता, तो वह शायद अब तक उसे लुटाकर फ़कीर ही जाता।

२

धर्मदास पानी लेकर लौट ही रहा था कि उसे पश्चिम की ओर से कई आदमी घोड़ों पर सवार आते दिखाई दिये। ज़रा और मनीष आने पर सालूम हुआ कि कुल पाँच आदमी हैं। उनकी बन्दूक की नलियाँ धूर में साफ़ चमक रही थीं। धर्मदास पानी लिले हुए दौड़ा कि कहीं रास्ते ही में सवार उसे न पकड़ लें; लेकिन कन्धे पर बन्दूक और एक हाथ में लोटा-डोर लिये वह बहुत तेज़ न दौड़ सकता था। फ़ासला दो सौ गज़ से कम न था। रास्ते में पत्थरों के ढेर टूटे-फूटे पड़े हुए थे। भय होता था कि कहीं टोकर न लग जाय, कहीं पैर न फिसल जाय। उधर सवार प्रतिक्षण समीप होते जाते थे। आरशी घोड़ों से उसका मुकाबला ही क्या, उस पर मज़िलों का धावा हुआ। मुश्किल से पचास क़दम गया होगा कि सवार उसके सिर पर आ पहुँचे और तुरन्त उसे घेर लिया। धर्मदास दहा साहसी था; पर मृत्यु की सासने खरी देखकर उसकी आँखों में धँधरा छा गया, उसके हाथ से बन्दूक छूटकर गिर पड़ी। पाँचों उसी के गोंव के सहस्रद्वी पदान थे; एक पदान ने कहा—दहा दो सिर मरदूँ था। दगावाज़ काफ़िर!

दूतरा - नहीं-नहीं, दहरो अगर यह इस वक्त की इस्लाम कहल कर ले, तो हम इसे गुनाह कर लकते हैं। क्यों धर्मदास, तुम्हें इस दगा की क्या

सज़ा दी जाय ? हमने तुम्हें रात-भर का वक्त फैसला करने के लिए दिया था । मगर तुम रात ही को हमसे दगा करके भाग निकले ; इस दगा की सज़ा तो यही है कि तुम इसी वक्त जहरनुम पहुँचा दिये जाओ ; लेकिन हम तुम्हें फिर एक मौका देते हैं । वह आखिरी मौका है । अगर तुमने अब भी इस्लाम न कबूल किया, तो तुम्हें दिन की रोशनी देखनी नसीब न होगी ।

धर्मदास ने हिचकिचाते हुए कहा—जिस बात को अकल नहीं मानती, उसे कैसे.....

पहले सवार ने आवेश में आकर कहा—मज़हब को अकल से कोई वास्ता नहीं ।

तीसरा - छुफ़ है !

पहला—उड़ा दो सिर मरदूद का, धुआँ इस पार ।

दूसरा—ठहरो-ठहरो, मार डालना मुश्किल नहीं, जिला लेना मुश्किल है । तुम्हारे और साथी कहाँ हैं धर्मदास ?

धर्मदास—सब मेरे साथ ही हैं ।

दूसरा—कलामे शरीफ़ की कसम ; अगर तुम सब खुदा और उसके रसूल पर ईमान लाओ, तो कोई तुम्हें तेज़ निगाहों से देख भी न सकेगा ।

धर्मदास—घाय लोग सोचने के लिए और कुछ मौका न देंगे ?

दूसरे पर चारो सवार चिल्ला उठे—नहीं, नहीं हम तुम्हें न जाने देंगे, यह आखिरी मौका है ।

इतना कहते ही पहले सवार ने बन्दूक छतिया ली और नली धर्मदास की छाती की ओर करके बोला—बस बोलो, क्या मंजूर है ?

धर्मदास सिर से पैर तक काँपकर बोला—अगर मैं इस्लाम कबूल कर लूँ, तो मेरे साथियों को तो कोई तकलीफ़ न दी जायगी ?

दूसरा—हाँ, अगर तुम ज़मानत करो कि वे भी इस्लाम कबूल कर लेंगे ।

पहला—हम हम शर्त को नहीं मानते । तुम्हारे साथियों से हम खुद निपट लेंगे । तुम अपनी कदो, क्या चाहते हो ? हाँ या नहीं ?

धर्मदास ने जहर का घूँट पीकर कहा—मैं तुदा पर ईमान लाता हूँ ।
पाँचों ने एक स्वर से कहा—अलहम्द व किल्लाह ! और दारी-दारी से
धर्मदास को गले लगाया ।

३

श्यामा हृदय को दोनों हाथों से धामे चढ़ दृश्य देख रही थी । जब मन
में पछुता रही थी कि मैंने क्यों इन्हें पानी लाने भेजा । अगर मालूम होता
कि विधि यों धोखा देगा, तो मैं प्यालों भर जाती ; पर इन्हें न जाने देती ।
श्यामा से कुछ दूर खजूँचन्द भी खड़ा था । श्यामा ने उत्तरी धार धुन्ध
नेत्रों से देखकर कहा—अब इनकी जान बचती नहीं सातून होती ।

खजूँचन्द—बन्दूक भी साथ ले लुट रही है ।

श्यामा—न-जाने क्या बालें हो रही हैं । शरे राजव ! दुष्ट ने उगली और
बन्दूक तामी है ।

खजूँ०—जरा धौर लसीप छा जायें, तो मैं बन्दूक चलाऊँ । इतनी दूर
धी मार हसुमें नहीं है ।

श्यामा—शरे ! देखो वे नव धर्मदास को गले लगा रहे हैं ! यह साजरा
क्या है ?

खजूँ०—एक सतरा में नहीं जाता ।

श्यामा—कहीं इनके कलना तो नहीं पर लिखा ?

खजूँ०—वही, ऐसा क्या होगा । धर्मदास से हुने ऐसी आशा
नहीं है ।

श्यामा—हैं सतरा गई । शीक रही बाक है । बन्दूक चलाओ ।

खजूँ०—धर्मदास दोब ने हैं । कहीं उन्हें न बग जाय ।

श्यामा—कीई हर्त गरी । मैं चाली हूँ, पहला विजाय धर्मदास ही
पर रहे । धायर ! मिर्हक ! आलो वे कि० धर्मदास दिया ! ऐसी देखाई
की शिन्दारी में तार बाया नहीं चखा है । क्या सोचते हो ! क्या तुम्हारे

हाथ-पाँव भी फूल गये ? लाओ, बन्दूक मुझे दे दो। मैं इस कायर को अपने हाथों से मारूँगी।

झाज़ाँ०—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि धर्मदास...

श्यामा—तुम्हें कभी विश्वास न आवेगा। लाओ बन्दूक मुझे दे दो। खड़े ताकते हो। क्या जब वे सिर पर आ जायेंगे, तब बन्दूक चलाओगे ? क्या तुम्हें भी यही मंजूर है कि मुसलमान होकर जान बूझो ? अच्छी बात है, जाओ श्यामा अपनी रक्षा आप कर सकती है; मगर उसे अब मुँह न दिखाना।

झाज़ाँचन्द ने बन्दूक चलाई। एक सवार की पगड़ी को उड़ाती हुई गोली निकल गई। जेहादियों ने 'अल्लाहो-अकबर !' की हॉक लगाई। दूसरी गोली चली और एक घोड़े की छाती पर बैठी। घोड़ा वहीं गिर पड़ा। जेहादियों ने फिर 'अल्लाहो अकबर !' की सदा लगाई और आगे बढ़े। तीसरी गोली आई। एक पठान लोट गया ; पर इसके पहले कि चौथी गोली छूटे, पठान झाज़ाँचन्द के निर पर पहुँच गये और बन्दूक उसके हाथ से छीन ली।

एक सवार ने झाज़ाँचन्द की ओर बन्दूक तानकर कहा—उड़ा दूँ सिर मरदूद का ? इससे खून का बदला लेना है !

दूसरे सवार ने जो इनका सरदार मालूम होता था, कहा—नहीं-नहीं यह दिलेर आदमी है। झाज़ाँचन्द, तुम्हारे ऊपर दगा, खून और कुफ़्र, ये तीन इल्जाम हैं, और तुम्हें कत्ल कर देना ऐन सवाब है ; लेकिन हम तुम्हें एक मौक़ा और देते हैं। अगर तुम अब भी खुदा और रसूल पर ईमान लाओ, तो हम तुम्हें ख़ाने से लगाने को तैयार हैं। इसके सिवा तुम्हारे मुताहॉं का और कोई कफ़ारा (प्रायश्चित्त) नहीं है। यह हमारा आख़िरी फ़ैसला है। बोलो, क्या मंजूर है ?

चारों पठानों ने कमर से तलवारें निकाल लीं और उन्हें झाज़ाँचन्द के सिर पर तान दिया, मानो 'नहीं' का शब्द मुँह से निकलते ही चारों तलवारें उसके गर्दन पर चल जायेंगी।

इज्जतुल्लाह का मुख-मण्डल विलक्षण तेज से आलोकित हो उठा। उसकी दोनों आँखें स्वर्गीय ज्योति से चमकने लगीं। दृढ़ता से बोला—तुम एक हिन्दू से यह प्रश्न कर रहे हो? क्या तुम समझते हो कि जान के खौफ से यह अपना ईमान बेच डालेगा? हिन्दू को अपने ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी नदी, बली या पैगम्बर की जरूरत नहीं!

चारों पटानों ने कहा—काफ़िर! काफ़िर!

इज्जतुल्लाह—अगर तुम मुझे काफ़िर समझते हो तो समझो। मैं अपने को तुमसे ज्यादा खुदा-परस्त समझता हूँ। मैं उस धर्म को मानता हूँ, जिसकी बुनियाद अल्फ पर है। आदमी में अल्फ ही खुदा का नूर (प्रकाश) है और हमारा ईमान हमारी अस्मिता.....

चारों पटानों के झुंठ से निकला 'काफ़िर! काफ़िर!' और चारों तलवारें एक साथ इज्जतुल्लाह की गर्दन पर गिर पड़ीं। लाश ज़मीन पर फड़कने लगी। धर्मदास फिर खुदाये खड़ा रहा। वह दिल में खुश था कि अब इज्जतुल्लाह की लारी संपत्ति उसके हाथ लगेंगी और वह श्यामा के साथ मुझ से रहेगा; पर दिव्यता की कुल्ल और ही संजूर था। श्यामा अब तक मनाहत-सी साड़ी यह दृश्य देख रही थी। ज्यों ही इज्जतुल्लाह ज़मीन पर गिरा, वह झपटकर लाश के पास भाई और उसे गोद में लेकर छाँचल से रक्त-प्रवाह को रोकने की कोशिश करने लगी। उसके सारे कपड़े खून से तर हो गये। उसने बड़ी सुन्दर बेल-बूँदवाली साड़ियाँ पहनी होंगी; पर इस रक्त-सञ्चित साड़ी की रोमाञ्जलता थी। बेल-बूँदवाली साड़ियाँ रूप की रोमाञ्जलता थी, वह रक्तसञ्चित साड़ी श्यामा की दृष्टि-द्विखा रही थी।

एला जान पड़ा; मानो इज्जतुल्लाह की कुल्लों जैसी एक अलौकिक ज्योति से प्रभावित हो गई हैं। उन नेत्रों से कितना सगतोष, कितनी वृत्ति, कितनी उत्कण्ठता गरी हुई थी। जीवन में कितने प्रेम की निष्ठा भी न पाई, वह मरने पर उत्सर्ग जैसे स्वर्गीय रत्न का रक्षानी बना हुआ था।

४

धर्मदास ने श्यामा का हाथ पकड़कर कहा—श्यामा, होश में आओ, तुम्हारे सारे कपड़े खून से तर हो गये हैं। अब रोने से क्या हासिल होगा ? ये लोग हमारे मित्र हैं, हमें कोई कष्ट न देंगे। हम फिर अपने घर चलेंगे और जीवन के सुख भोगेंगे।

श्यामा ने तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—तुम्हें अपना घर बहुत प्यारा है, तो जाओ। मेरी चिन्ता मत करो, मैं अब न जाऊँगी। हाँ अगर अब भी मुझसे कुछ प्रेम हो तो इन लोगों से इन्हीं तलवारों से मेरा भी अन्त करा दो।

धर्मदास करुणा-कातर स्वर से बोला—श्यामा, यह तुम क्या कहती हो, तुम भूल गई कि हमसे-तुमसे क्या बातें हुई थीं ? मुझे खुद इज्जत-चन्द के सारे जाने का शोक है ; पर भावी को कौन टाल सकता है ?

श्यामा—अगर यह भावी थी, तो यह भी भावी है कि मैं अपना अधम जीवन उस पवित्र आत्मा के शोक में काटूँ, जिसका मैंने सदैव निरादर किया।

यह कहते-कहते श्यामा का शोकोग्गार जो अब तक क्रोध और घृणा के नीचे दबा हुआ था, अबतक पड़ा और वह इज्जत-चन्द के निस्पन्द हथों को अपने गले से डालकर रोने लगी।

चारों पटान यह अलौकिक अनुराग और धातन-समर्पण देवकर करखार्द्र हो गये। सरदार ने धर्मदास से कहा—तुम इस पापीजा स्रातून से कहो, हमारे साथ चले। हमारी जात से इसे कोई तकलीफ न होगी। हम इसकी दित से इज्जत करेंगे।

धर्मदास के हृदय में ईर्ष्या की आग धधक रही थी। वही रसखी, जिसे वह अपनी सगके बैठा था, इस वक्त उसका मुँह भी नहीं देखना चाहती थी। बोला—श्यामा, तुम चाहे इस लाश पर शीशुओं की नद्री बजा दो ; पर यह जिन्दा न होगी। यहाँ से चलने की तैयारी करो। मैं साथ के और लोगों को भी जाकर समझाता हूँ। ये ज्ञान लोग हमारी रक्षा करने का जिम्मा ले रहे

हमारी जायदाद, ज़मीन, दौलत सब हमको मिल जायगी। इज्जतचन्द की दौलत के भी हमी मालिक होंगे। अब देर न करो। रोने-धोने से अब कुछ हासिल नहीं।

श्यामा ने धर्मदास को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा—और इस वापसी की क़ीमत क्या देनी होगी ? वही जो तुमने दी है ?

धर्मदास यह व्यंग न समझ सका। बोला—मैंने तो कोई क़ीमत नहीं दी। मेरे पास था ही क्या

श्यामा—ऐसा न कहो। तुम्हारे पास वह इज्जतना था, जो तुम्हें आज कई लाख वर्ष हुए ऋषियों ने प्रदान किया था, जिसकी रक्षा रघु और मनु, राम और कृष्ण, बुद्ध और शंकर, शिवाजी और गोविन्दसिंह ने की थी। इस अमूल्य भण्डार को आज तुमने तुच्छ प्राणों के लिए खो दिया। इन पाँवों पर लौटना तुम्हें सुवारक हो। तुम शौक से जाओ। जिन तलवारों ने वीर इज्जतचन्द के जीवन का अन्त किया, उन्होंने मेरे प्रेम का भी फैसला कर दिया। जीवन में इस वीरात्मा का मैंने जो निरादर और अपमान किया, हमसे लाभ जो उदासीनता दिखाई, उसका अद सरने के बाद प्रायश्चित्त करेंगी। यह धर्म पर सरनेवाला वीर था, धर्म की बेचनेवाला कायर नहीं। अगर तुममें अब भी कुछ शर्म और हया है, तो इसका क्रिया कर्म करने में मेरी मदद करो और यदि तुम्हारे रवामियों को यह भी पसन्द न हो, तो रहने दो, मैं हल्ल कर लूँगी।

पत्थरों के हृदय दर्द से तड़प उठे। धर्मान्धता का प्रकोप शान्त हो गया। देखते-देखते वहाँ लक्ष्मियों का ढेर लग गया। धर्मदास रत्नानि से सिर कुहाये पैदा था और चारों पटान लक्ष्मियों काट रहे थे ! चिन्ता सेवार हुई और जिन निर्दय हाथों ने इज्जतचन्द की जान ली थी, उन्होंने ने उसके शव को चिन्ता पर रखा। उवाला प्रचण्ड हुई। अग्निदेव अपने अग्नि-मुख से उस धर्म-वीर का पटा गा रहे थे !

५

पठानों ने खज्जाँचन्द की सारी जङ्गम सम्पत्ति लाकर श्यामा को दे दी। श्यामा ने वहीं एक छोटा-सा मकान बनवाया और वीर खज्जाँचन्द की उपासना में जीवन के दिन काटने लगी। उसकी वृद्धा बुआ तो उसके साथ रह गई और और सब लोग पठानों के साथ लौट गये; क्योंकि अब मुसलमान होने की शर्त न थी। खज्जाँचन्द के वलिदान ने धर्म के भूत को परास्त कर दिया। मगर धर्मदास को पठानों ने इस्लाम की दीक्षा लेने पर मजबूर किया। एक दिन नियत किया गया। मसजिद में मुदलाओं का मेला लगा, और लोग धर्मदास को उसके घर से बुलाने आये; पर उसका वहाँ पता न था। चारों तरफ तलाश हुई। कहीं निशान न मिला।

साल-भर गुज़र गया। सन्ध्या का समय था। श्यामा अपने भोपड़े के सामने बैठी भविष्य की मधुर कल्पनाओं में मग्न थी। अतीत उसके लिए दुःख से भरा हुआ था। वर्तमान केवल एक निराशामय दृश्य था। सारी अभिलाषाएँ भविष्य पर अवलम्बित थीं। और भविष्य भी वह जिसका इस जीवन से कोई सम्बन्ध न था। आकाश पर लालिमा छाई हुई थी। सामने की पर्वतमाला स्वर्णमयी शान्ति के आवरण से ढकी हुई थी। वृक्षों की काँपती हुई पत्तियों से सरसराहट की आवाज़ निकल रही थी, मानो कोई वियोगी आत्मा पत्तियों पर बैठी हुई सिसकियाँ भर रही हो।

उसी वक्त एक भिखारी फटे हुए कपड़े पहने भोपड़ी के सामने खड़ा हो गया। कुत्ता ज़ोर से भूँक उठा। श्यामा ने चौंककर देखा और चिल्ला उठी—धर्मदास !

धर्मदास ने वहीं ज़मीन पर बैठते हुए कहा—हाँ श्यामा, मैं अभागा धर्मदास ही हूँ। साल-भर से मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझे खोज निकालने के लिए इनाम रख दिया गया है। सारा प्रान्त मेरे पीछे पड़ा हुआ है। इस जीवन से अब ऊब उठा हूँ; पर मौत भी नहीं आती।

धर्मदास एक क्षण के लिए चुप हो गया। फिर बोला—‘क्यों श्यामा, क्या अभी तुम्हारा दिल मेरी तरफ से साफ नहीं हुआ ? तुमने मेरा अपराध क्षमा नहीं किया ?’

श्यामा ने उदासीन भाव से कहा—‘मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।

‘मैं अब भी हिन्दू हूँ। मैंने दूरलाम नहीं कदल किया है।’

‘जानती हूँ।’

‘यह जानकर भी तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती ?’

श्यामा ने कंठ में नेत्रों से देखा और उत्तेजित होकर बोली—‘तुम्हें अपने मुँह से ऐसी बातें निकालते शर्म नहीं आती ! मैं उस धर्मपार की व्याहता हूँ, जिसने हिन्दू-जाति का सुख उड़वत किया है। तुम समझते हो कि यह मर गया ? यह तुम्हारा भ्रम है। यह अमर है। मैं इस समय भी उसे स्वर्ग में बैठा देख रही हूँ। तुमने हिन्दू-जाति को कलंकित किया है। मेरे सामने से दूर हो जाओ।’

धर्मदास ने कुछ जवाब न दिया। चुपके से उठा, एक लम्बी साँस ली और एक तरफ चल दिया।

प्रातःकाल श्यामा पानी भरने जा रही थी; तब उसने रास्ते में एक लाश पड़ी हुई देखी। दो-चार गिद्ध उस पर बैठे रहे थे। उसका हृदय धड़कने लगा। समीप जाकर देखा और पहचान गई। वह धर्मदास की लाश थी !

मन्त्र

१

सन्ध्या का समय था। डाक्टर चड्ढा गोल्फ खेलने को तैयार हो रहे थे। मोटर द्वार के सामने खड़ी थी कि दो कहार एक डोली लिये आते दिखाई दिये। डोली के पीछे एक बूढ़ा लाठी टेकते चला आता था। डोली औषधालय के सामने आकर रुक गई। वृद्ध ने धीरे-धीरे आकर द्वार पर पड़ी हुई चिक से भाँका ! ऐसी साफ-सुथरी ज़मीन पर पैर रखते हुए भय हो रहा था कि कोई छुड़क न बैठे। डाक्टर साहब को मेज के सामने खड़े देखकर भी उसे कुछ कहने का साहस न हुआ।

डाक्टर साहब ने चिक के अन्दर से गरजकर कहा—कौन है ? क्या चाहता है ?

वृद्ध ने हाथ जोड़कर कहा—हज़ूर बड़ा गरीब आदमी हूँ। मेरा लड़का कई दिन से.....

डाक्टर साहब ने सिगार जलाकर कहा—कल सवेरे आओ, कल सवेरे। हम इस वक्त मरीज़ों को नहीं देखते।

वृद्ध ने घुटने टेककर ज़मीन पर सिर रख दिया और बोला—दुहाई है सरकार की, लड़का मर जायगा। हज़ूर चार दिन से आँखें नहीं.....

डाक्टर चड्ढा ने कतार्ई पर नज़र डाली। केवल १० मिनट समय और बाकी था। गोल्फ-स्टिक खँटी से उतारते हुए बोले—कल सवेरे आओ, कल सवेरे। यह हमारे खेलने का समय है।

वृद्ध ने पगड़ी उतारकर चौखट पर रख दी और रोकर बोला—हज़ूर एक निगाह देख लें। बस एक निगाह ! लड़का हाथ से चला जायगा हज़ूर, सात लड़कों में यही एक बच रहा है हज़ूर, हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायेंगे, सरकार, आपकी बड़ती होय, दीनबन्धु।

ऐसे बजह देहाती यहाँ प्रायः रोज़ ही आया करते थे। डाक्टर साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे। कोई कितना ही कुछ कहे; पर वे अपनी ही रट लगाते जायेंगे। किसी की सुनेंगे नहीं। धीरे से चिक उठाई और बाहर निकलकर मोटर की तरफ़ चले। बूढ़ा यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा—सरकार बड़ा धरम होगा, हज़ूर दया कीजिए, बड़ा दीन-दुस्ती हूँ, संसार में कोई और नहीं है, चावूजी!

मगर डाक्टर साहब ने उसकी धोर हुई फेरकर देखा तक नहीं। मोटर पर बैठकर बोले—कल सबेरे घाना।

मोटर चली गई। बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने अ-मोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य-संसार इतना निर्मम, इतना दयोर है, इसका ऐमा मर्म-वेदी अनुभव अब तक न हुआ था। यह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुँदों को कन्धा देने, किनी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। जब तक पृथे को मोटर दिखाई दी, वह खड़ टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी। फिर उसने कहाँ से डोली उठाने को कहा। डोली जिधर से आई थी, उधर ही चली गई। पारों धोर से निराश होकर वह डाक्टर बूढ़ा के पास आया था। हुनकी बड़ी तारीफ़ सुनी थी। यहाँ से निराश होकर फिर वह किसी दूसरे डाक्टर के पास न गया। किरमत टोत्र ली।

उसी रात को उसका हँसता-खेलता मात्र साल का बालक अपनी बाल-खीजा समाप्त करके इस संसार से सिधार गया। बूढ़े माँ-बाप के जीवन का यही एक आधार था। इसी का हँद देखकर जीते थे। इस दीपक के बुझते ही जीवन की सँधेरी रात भँस-भँस करके लगती। हुनापे की विद्याल नमता बूढ़े हुए हृदय से निकलकर उस अन्धकार में आर्त-स्वर से रोने लगी।

२

कई साल गुज़र गये। डाक्टर चड्ढा ने खूब यश और धन कमाया ; लेकिन इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी की, जो एक असाधारण बात थी। यह उनके नियमित जीवन का आशीर्वाद था कि ५० वर्ष की अवस्था में उनकी चुस्ती और फुर्ती युवकों को भी लड्डित करती थी। उनके हर एक काम का समय नियत था। इस नियम से वह जौ-भर भी न टलते थे। बहुधा लोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन उस समय करते हैं, जब रोगी हो जाते हैं। डाक्टर चड्ढा उपचार और समय का रहस्य खूब समझते थे। उनकी संतान-संख्या भी इसी नियम के अधीन थी। उनके देवल दो बच्चे हुए, एक लड़का और एक लड़की। तीसरी सन्तान न हुई : इसलिए श्रीमती चड्ढा भी अभी जवान मालूम होती थीं। लड़की का तो विवाह हो चुका था। लड़का कॉलेज में पढ़ता था। वही माता-पिता के जीवन का आधार था। शील और विनय का पुतला, बड़ा ही रसिक, बड़ा ही उदार, विद्यालय का गौरव, युवक-समाज की शोभा, सुख-मगडल से तेज की छटा सी निकलती थी। आज उसी की बीसवीं साल-गिरह थी।

सन्ध्या का समय था। हरी-हरी घास पर कुरसियाँ बिछी हुई थीं। शहर के रईस और हुक्माम एक तरफ़, कॉलेज के छात्र दूसरी तरफ़, बैठे भोजन कर रहे थे। विजली के प्रकाश से सारा मैदान जगमगा रहा था। आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था। छोटा सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलासनाथ ने लिखा था। वही मुख्य ऐडटर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज़ पहने, रंगे सिर, रंगे पाँव, इधर-से-उधर मित्रों की आव-भगत में लगा हुआ था। कोई पुकारता—कैलास, जरा इधर आना ; कोई उधर से बुलाता—कैलास, क्या उधर ही रहोगे। सभी उसे छेड़ते थे, चुहलें करते थे। बेचारे को ज़रा दम मारने का अवकाश न मिलता था।

सहसा एक रमणी ने उसके पास आकर कहा—क्यों कैलास, तुम्हारे सॉप कहाँ हैं ? ज़रा मुझे दिखा दो।

कैलास ने उससे हाथ हिलाकर कहा—मृणालिनी, इस वक्त क्षमा करो, कल दिखा दूँगा ।

मृणालिनी ने आग्रह किया—जी नहीं तुम्हें दिखाता पड़ेगा, मैं आज नहीं मानने को, तुम रोज़ कल-कल करते रहते हो ।

मृणालिनी और कैलास दोनों सहपाठी थे और एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए । कैलास को सर्पों के पालने, खेलाने और नचाने का शौक था । तरह-तरह के सर्प पाल रखे थे । उनके स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करते रहते थे । थोड़े दिन हुए, उन्होंने दिद्यालय में 'सर्पों' पर एक नारके का व्याख्यान दिया था । सर्पों को नवाकर दिखाया भी था । प्राणि-शास्त्र के बड़े-बड़े पण्डित भी यह व्याख्यान सुनकर दंग रह गये थे । यह विद्या उसने एक बड़े सपेरे से सीखी थी । सर्पों की जड़ो-बूटियों जमा करने का उसे मरज़ था । इतना पता भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति के पास कोई जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था । उसे लेकर ही छोड़ता था । यही व्यसन था । इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था । मृणालिनी कई बार आ चुकी थी ; पर कभी सर्पों के देखने के लिए इतनी उत्सुक न हुई थी । कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सच-सुच जान गई थी, था वह कैलास पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहता था ; पर उसका आग्रह देमौझा था । उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायगी, भीड़ को देखकर सर्प कितने चौंकेंगे और रात के समय उन्हें देहा जाना कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे ज़रा भी ध्यान न आया ।

कैलास ने कहा—नहीं, बल झरूर दिखा दूँगा । इस वक्त अचढ़ी तरह दिहा भी हो न लखूँगा, कमरे में तिल रखने की जगह भी न मिलेगी ।

एक सप्ताशय ने देहकर कहा—दिहा क्यों नहीं देते जी, ज़रा-सी बात के लिए इतना टालमटोल कर रहे हो । जिस गोविन्द, हर्षिज न मानना । देहो जैसे नहीं दिखाने ।

दूसरे महाशय ने और कहा—चदाय—जिस गोविन्द इतनी सीधी और

भोली हैं तभी आप इतना मिज़ाज़ करते हैं। दूसरी सुन्दरी होती, तो इसी बात पर बिगड़ खड़ी होती।

तीसरे साहब ने मज़ाक उड़ाया—अजी बोलना छोड़ देती। भला कोई बात है ! इस पर आपको दावा है कि मृणालिनी के लिए जान हाज़िर है।

मृणालिनी ने देखा कि ये शोहदे उसे चंग पर चढ़ा रहे हैं, तो बोली—आप लोग मेरी वकालत न करें, मैं खुद अपनी वकालत कर लूंगी। मैं इस वक्त साँपों का तमाशा नहीं देखना चाहती। चलो छुटो हुई।

इस पर मित्रों ने टट्टा लगाया। एक साहब बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहें ; पर कोई दिखाये भी तो ?

कैलास को मृणालिनी की भैंपी हुई सूरत देखकर मालूम हुआ कि इस वक्त उसका इनकार वास्तव में उसे बुरा लगा है। ज्यों ही प्रीति-भोज समाप्त हुआ और गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरबे के सामने ले जाकर महुशर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोलकर एक-एक साँप को निकालने लगा। वाह ! क्या कमाल था ! ऐसा जान पड़ता था कि ये कीड़े उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-एक भाव समझते हैं। किसी को उठा लिया, किसी को गरदन में डाल लिया, किसी को हाथ में लपेट लिया। मृणालिनी बार-बार मना करती कि इन्हें गरदन में न डालो, दूर ही से दिखा दो। बस ज़रा नचा दो। कैलास की गरदन में साँपों को लिपटते देखकर उसकी जान निकल जाती थी। पछुता रही थी कि मैंने व्यर्थ ही इनसे साँप दिखाने को कहा ; मगर कैलास एक न सुनता था। प्रेमिका के सम्मुख अपनी सर्प-कला-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कब चूकता। एक मित्र ने टीका की—दाँत तोड़ डालते होंगे ?

कैलास हँसकर बोला—दाँत तोड़ डालना मदारियों का काम है। किसी के दाँत नहीं तोड़े गये। कहिए तो दिखा दूँ। यह कहकर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला—मेरे पास इससे बड़ा और ज़हरीला साँप

दूसरा नहीं है। अगर किसी को काट जे, तो आदमी आनन-फानन मर जाय। लहर भी न आये। इसके कांटे का मंत्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ।

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—नहीं, नहीं, कैलास, ईश्वर के लिए इसे छोड़ दो! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ!

इस पर एक दूसरे मित्र बोले—मुझे तो विश्वास नहीं आता; लेकिन तुम कहते हो तो मान लूँगा।

कैलास ने सर्प की गरदन पकड़कर कहा—नहीं साहब, आप शीशों से देखकर मानिए। दाँत तोड़कर घस में किया, तो घसा किया। सर्प बड़ा समझदर होता है; अगर उसे विश्वास हो जाय कि इस आदमी से मुझे कोई हानि न पहुँचेगी, तो वह इसे ढगिज़ न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलास पर इस चक्र भूत सवार है, तो उसने वह तनाशा बन्द करने के विचार से कहा—अच्छा भई, अब यहाँ से चली, देखो गाना शुरू हो गया। आज मैं भी कोई चीज़ सुनाऊँगी। यह पहले हुए उसने कैलास का कंधा पकड़कर चलने का इशारा किया और क्रम से निकल गई; अगर कैलास विरोधियों का भ्रंका-समाधान करके ही दम लेना चाहता था। उसने सर्प की गरदन पकड़कर ज़ोर से दवाई, दुर्ती ज़ोर से दवाई कि उसका मुँह लाल हो गया, देह की सारी नसें तन गईं। सर्प के घब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि वह तुम्हसे क्या चाहते हैं। उसे भावद भ्रम हुआ कि यह तुम्हें मार डालना चाहते हैं। शतपुत्र वह आतरक्षा के लिए तैयार हो गया।

कैलास ने उसकी गरदन छूट दबाकर उसका मुँह खोल दिया और उसके इतरित दाँत दिखाते हुए बोला—जिन सज्जनों को मार हो, आकर देख लें। जया विश्वास, या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दाँत देने और चकित हो गये। मरदक्ष भ्रातृ के सामने सदेह हो स्थान वहाँ। मित्रों का भ्रंका-विचारण करके कैलास ने सर्प की गरदन टँटो कर दी और उसे ज़मीन पर रखना चाहा; पर वह काला नेहूँवन क्रोध से पागल हो रहा

था। गरदन नरम पड़ते ही उसने सिर उठाकर कैलास की उँगली में ज़ोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलास की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उसने ज़ोर से उँगली दबा ली और अपने कमरे की तरफ़ दौड़ा। वहाँ मेज़ की दराज़ में एक जड़ी रखी हुई थी, जिसे पीसकर लगा देने से घातक विष भी रफू हो जाता था। मित्रों में हलचल पड़ गई। बाहर महफिल में भी ख़बर गई। डाक्टर साहब घबड़ाकर दौड़े। फौरन् उँगली की जड़ फसकर बाँधी गई और जड़ी पीसने के लिए दी गई। डाक्टर साहब जड़ी के क़ायल न थे। वह उँगली का उसा भाग नशतर से काट देना चाहते थे; मगर कैलास को जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृणालिनी प्यानो पर बैठी हुई थी। यह ख़बर सुनते ही दौड़ी, और कैलास की उँगली से टपकते हुए खून को रुमाल से पोंछने लगीं। जड़ी पीसी जाने लगी; पर उसी एक मिनट में कैलास की आँखें झपकने लगीं, ओंठों पर पीलापन दौड़ने लगा। यहाँ तक कि वह खड़ा न रह सका। फ़र्श पर बैठ गया। सारे मेहमान कमरे में जमा हो गये। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। इतने में जड़ी रिसकर आ गई। मृणालिनी ने उँगली पर लेप किया। एक मिनट और बीता। कैलास की आँखें बन्द हो गईं। वह लेट गया और हाथ से पंखा झलने का इशारा किया। माँ ने दौड़कर उसका सिर गोद में रख लिया और विजली का टेबुल फैन लगा दिया गया।

डाक्टर साहब ने झुककर पूछा—कैलास कैसी तबीयत है? कैलास ने धीरे से हाथ उठा दिया; पर कुछ बोल न सका! मृणालिनी ने कड़क-स्वर में कहा—क्या जड़ी कुछ असर न करेगी? डाक्टर साहब ने फिर पकड़कर कहा—क्या बतलाऊँ, मैं इसकी बातों में आ गया। अब तो नशतर से भी कुछ क़ायदा न होगा।

आध घण्टे तक यही हाल रहा। कैलास की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि उसकी आँखें पथरा गईं, हाथ-पाँव ठंड़े हो गये, मुँह की कान्ति मलिन पड़ गई, नाड़ी का कहीं पता नहीं। मौत के सारे

लक्षण दिखाई देने लगे । घर में कुहराम मच गया । सृणालिनी एक और सिर पीटने लगी, माँ अलग पछाड़ें खाने लगी । डाक्टर चड्ढा को मित्रों ने पकड़ लिया, नहीं तो वह नशतर अपनी गरदन पर मार लेते ।

एक महाशय बोले—कोई मंत्र भाड़नेवाला मिले, तो सम्भव है अब भी जान बच जाय ।

एक मुसलमान सज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब, कब मैं पड़ी हुई लाशें ज़िन्दा हो गई हैं । ऐसे-ऐसे बाकमाल पड़े हुए हैं ।

डाक्टर चड्ढा बोले—मेरी अबल पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी बातों में आ गया । नशतर लगा देता, तो यह नीशत ही क्यों प्राणी । बार-बार समझाता रहा कि घेठा सोंप न पालो ; मगर दौन चुनता था ! बुलाइए, किसी भाड़-फूंक करनेवाले टी को बुलाइए । मेरा सब कुछ ले-ले, मैं अपनी सारी जायदाद उसके पैरों पर रख दूँगा । लंगोटी बाँधकर घर से निकल जाऊँगा ; मगर मेरा कैलास, मेरा प्यारा कैलास उठ बैठे । ईश्वर के लिए किसी को बुलाइए ।

एक महाशय का किसी भाड़नेवाले से परिचय था । वह दौड़कर उसे बुला लाये ; मगर कैलास की सूरत देखकर उसे मन्त्र चकाने की हिम्मत न पड़ी । बोला—अब क्या हो सकता है सरकार, जो कुछ होना था, हो चुका !

अरे भूख, यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ न होना था हो चुका । जो कुछ होना था, यह कहीं हुआ ? मा-बाप ने दैते का सेहरा कहीं देखा ? सृणालिनी का कामना-तर क्या पल्लव और पुष्प से रंजित हो उठा ? मन के घट रक्षण-रक्षण, जिनसे जीवन आनन्द का स्रोत बना हुआ था, क्या वह पूरे हो गये ? जीवन के नृत्यमय, तारिका-मण्डित सागर में आनन्द की बहार लूटते हुए क्या लवकी बौका जलमग्न नहीं हो गई ? जो न होना था वह हो गया !

वही हरा-भरा मैदान था, वही सुनहरी चाँदनी एक निःशब्द संगीत की भाँति प्रकृति पर छाई हुई थी, वही मित्र समाज था । वही मनोरंजन के

सामान थे, मगर जहाँ हास्य की ध्वनि थी, वहाँ अब कर्ण-क्रन्दन और अश्रु-प्रवाह था।

३

शहर से कई मील दूर एक छोटे से घर में एक बूढ़ा और बुढ़िया अँगोठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे। बूढ़ा नारियल पीता था और बीच-बीच में खीसता था। बुढ़िया दोनों घुटनियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी। एक मिट्टी के तेल की कुप्पी ताक पर जल रही थी। घर में न चारपाई थी, न बिछौना। एक किनारे धोड़ी-सी पुआल पड़ी हुई थी। इसी कोठरी में एक चूल्हा था। बुढ़िया दिन-भर उपले और सूखी लकड़ियाँ बटोरती थी। बूढ़ा रस्ते बटकर बाज़ार में बेच जाता था। यही उनकी जीविका थी। उन्हें न किसी ने रोते देखा, न हँसते। उनका सारा समय जीवित रहने में कट जाता था। मौत द्वार पर खड़ी थी। रोने या हँसने की कहीं फुर्सत ! बुढ़िया ने पूछा—कल के लिए सन तो है ही नहीं, काम क्या करोगे ?

‘जाकर भगदू साह से दस सेर सन उधार लाऊँगा।’

‘उसके पहले के पैसे तो दिये ही नहीं और उधार कैसे देगा ?’

‘न देगा न सही। घास तो कहीं नहीं गई है। दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा ?’

दूतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज़ दी—भगत, भगत, क्या सो गये ? ज़ारा क्वाड़ खोलो।

भगत ने उठकर क्वाड़ खोल दिये। एक आदमी ने अन्दर आकर कहा—कुछ सुना, डाक्टर चड्डा बाबू के लड़के को साँप ने काट लिया।

भगत ने चौंकर कहा—चड्डा बाबू के लड़के को ! वही चड्डा बाबू है न, जो छावनी में बैंगले में रहते हैं ?

‘हाँ-हाँ वही। शहर में हरकत मचा हुआ है। जाते हो तो जाओ, आदमी बन जाओगे ?’

वृद्ध ने कठोर भाव से सिर हिलाकर कहा—मैं नहीं जाता। मेरी चला जाय। वही चढ़ा हैं। खूब जानता हूँ। भैया को लेकर उन्हीं के पास गया था। खेलने जा रहे थे। पैरो पर गिर पड़ा कि एक नज़र देख लीजिए; मगर सीधे सुँह बात तक न की। भगवान् बैठे सुन रहे थे। अब जान पड़ेगा कि बेटे का नाम कैसा होता है। कई लड़के हैं ?

‘नहीं जी, यही तो एक लड़का था। सुना है सबने जवाब दे दिया है।’

‘भगवान् बड़ा कारसाज है। उस वक़्त मेरी झँझों से शॉन्स निकल पड़े थे; पर इन्हें तनिक भी दया न आई थी। मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता।’

‘तो न जाओगे ? हमने जो सुना था सो कह दिया।’

‘अच्छा किया, अच्छा किया, कलेजा टपटा हो गया, झँझें टपटी हो गईं। लड़का भी टपटा हो गया होगा ! तुम जाओ। आज सैन की नींद सोईगा। (बुदिया से) जरा तमाखू ले ले। एक चिलम और फाँऊंगा। अब मालूम होगा लाला को ! सारी साहिबी निकल जायगी, हमारा क्या भिगाए। लड़के के मर जाने से कुछ राज तो नहीं चला गया। जहाँ छः बच्चे गये थे, वहाँ एक और चला गया। तुम्हारा तो राज सूना हो जायगा। इसी के वारते सबका गला दवा-दवाकर जोड़ा था न। अब क्या करने। एक बार देखने जाऊँगा; पर कुछ दिन रात। मिजाज का हाल पूछूँगा।’

आदमी चला गया। भगत ने किवाड़ बन्द कर लिये, तब चिलम पर तमाखू रखकर पीने लगा।

बुदिया ने कहा—दूतनी रात गये जाड़े-पाले में कौन जायगा।

‘घरे होपटर ही होता, तो मैं न जाता। सवारी दरवाजे पर लेने जाती, तो भी मैं न जाता। झूठ नहीं गया हूँ। पन्ना की सूत आज भी झँझों में पिर रही है। इस निर्दयी ने उसे एक नज़र देखा तक नहीं। क्या मैं न जानता था कि वह न बड़ेगा ? खूब जानता था। चढ़ा भगवान् नहीं थे कि हमके एक निगाह देख लेने से दस्त बरस जाता। नहीं, खाली मन की

दौड़ थी। ज़रा तसल्ली हो जाती; बस, इसी लिए उसके पास दौड़ा गया था। अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा, क्यों साहब, कहिए क्या रंग है? दुनिया बुरा कहेगी, कहे; कोई परवाह नहीं। छोटे आदमियों में तो सब ऐब होते ही हैं। बड़ों में कोई ऐब नहीं होता। देवता होते हैं।'

भगत के लिए जीवन में यह पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पाकर वह बैठा रह गया हो। ८० वर्ष से जीवन में ऐसा कभी न हुआ कि साँप की खबर पाकर दौड़ा न गया हो। माव-पूस की अँधेरी रात, चैत-बैसाख की धूप और लू, सावन-भादों के चढ़े हुए नदी और नाले, किसी की उसने कभी परवाह न की। वह तुरन्त घर से निकल पड़ता था, निस्वार्थ, निष्काम। लेने-देने का विचार कभी दिल में आया ही नहीं। यह ऐसा काम ही न था। जान का मूल्य कौन दे सकता है? यह एक पुण्य-कार्य था। सैकड़ों निराशों को उसके मन्त्रों ने जीवन-दान दे दिया था; पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका। यह खबर सुनकर भी सोने जा रहा है।

बुढ़िया ने कहा—तमाखू अँगोठी के पास रखी हुई है। उसके भी आज ढाई पैसे हो गये। देती ही न थी।

बुढ़िया यह कहकर लौटी। वृद्धे ने छुपरी बुझाई, कुछ देर सड़ा रहा, फिर बैठ गया। शान्त को लेट गया; पर यह खबर उसके हृदय पर बोझ की भाँति रखी हुई थी। उसे मालूम हो रहा था, उसकी कोई चीज़ खो गई है, जैसे सारे कपड़े गीले हो गये हैं, या पैरों में कीचड़ लगा हुआ है, जैसे कोई उसके मन में बैठा हुआ उसे घर से निकालने के लिए कुरेद रहा है। बुढ़िया ज़रा देर में खराँटे लेने लगी। वृद्धे बातें करते-करते सोते हैं, और ज़रा-सा झटका होते ही जागते हैं। तब भगत उठा, अपनी लकड़ी उठा ली और धीरे से किवाड़ खोले।

बुढ़िया ने पूछा—कहाँ जाते हो ?

'कहीं नहीं, देखता था कितनी रात है।'

'अभी बहुत रात है, सो जाओ।'

‘नींद नहीं आती ।’

‘नींद काहे को आयेगी ? मन तो चढ़ा के घर पर लगा हुआ है ।’

‘चढ़ा ने मेरे साथ कौन-सी नेकी कर दी है, जो वहाँ जाऊँ । वह आकर पैरों पड़े, तो भी न जाऊँ ।’

‘उठे तो तुम इसी इरादे से हो ।’

‘नहीं री, ऐसा पागल नहीं हूँ कि जो मुझे काँटे चीवे, उसके लिए फूल बोता फिरूँ ।’

बुढ़िया फिर सो गई । भगत ने किवाड़ लगा दिये और फिर आकर पीटा ; पर उसके मन की कुछ बड़ी दशा थी, जो बाजे की धावाज कान में पड़ते ही, उपदेश सुननेवालों की होती है । घ्राँसें चाहे उपदेशक की शोर हों ; पर कान बाजे ही की शोर होते हैं । दिल में भी बाजे की ध्वनि गूँजती रहती है । शर्म के मारे जगह से नहीं उठता । निर्दयी प्रतिपात का भाव भगत के लिए उपदेश था ; पर हृदय उस अभागे युवक की शोर था, जो इस समय सर रहा था, जिसके लिए एक-एक पल का विलम्ब घातक था ।

उसने फिर किवाड़ खोले, इतने धीरे से कि बुढ़िया को भी स्वर न हुई । बाहर निकल आया । उसी दफ्त गाँव का चौकीदार गश्त लगा रहा था । बोला—कैसे उठे भगत, आज तो नहीं सरदी है ! कहीं जा रहे हो क्या ?

भगत ने कहा—वहीं जा, जाऊँगा कहीं ! देखता था अभी कितनी रात है, भला कै बजे होंगे ?

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या, सभी थाने से जा रहा था, तो राश्टर चढ़ा बाबू के दौंगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी । उनके लड़के का हाल ही तुमने सुना होगा, कीड़े ने हूँ लिया है । चाहे मर भी गया हो । तुम चले जाओ, तो साहूत बच जाय । सुना दस हजार तक देने की तैयार हैं ।

भगत—मैं तो न जाऊँ, चाहे वह दस लाख भी हों । मुझे दसह हज़ार या दस लाख लेकर करना क्या है ? एक मर जाऊँगा, फिर कौन भोगनेवाला बैठा हुआ है !

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह झपने काबू में नहीं रहती, पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जवान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था, दम्भ था, हिंसा थी; पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलाई, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं !

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था। चेतना रोकती थी। सेवक स्वामी पर हावी था।

आधो रात निकल जाने के बाद सहसा भगत रुक गया। हिंसा ने क्रिया पर विजय पाई—मैं यों ही इतनी दूर चला आया। इस जाड़े-पाले में मरने की मुझे क्या पड़ी थी ? आराम से सोया क्यों नहीं ? नींद न आती न सही, दो-चार भजन ही गाता। व्यर्थ इतनी दूर दौड़ा आया। चड्डा का लड़का रहे, या मरे, मेरी बला से, मेरे साथ उन्होंने ऐसा कौन-सा सलूक किया था कि मैं उनके लिए मरूँ। दुनिया में हज़ारों जीते हैं। मुझे किसी के मरने-जीने से मतलब !

मगर उपचेतना ने अब एक दूसरा रूप धारण किया, जो हिंसा से बहुत कुछ मिलता-जुलता था—झाड़-फूँक करने नहीं जा रहा है, वह देखेगा कि लोग क्या कर रहे हैं, ज़रा डाक्टर साहब का रोना-पीटना देखेगा, किस तरह खिर पीटते हैं, किस तरह पछाड़ें खाते हैं। वह देखेगा कि बड़े लोग भी छोटा की भाँति रोते हैं या स़बर कर जाते हैं। वह लोग तो विद्वान् होते हैं, स़बर कर जाते हैं। वह लोग तो विद्वान् होते हैं, स़बर कर जाते होंगे। हिंसा भाव को यों धीरज देता हुआ वह फिर आगे बढ़ा।

इतने में दो आदमी आते दिखाई दिये। दोनों बातें करते चले आ रहे रहे थे—चड्डा बाबू का घर उजड़ गया, यही तो एक लड़का था। भगत के कान में यह आवाज़ पड़ी। उसको चाल और भी तेज़ हो गई। धरुन के भारे पाँव न उठते थे। शिरोभाग इतना बढ़ा जाता था मानो अब मुँह के

चल गिर पड़ेगा। इस तरह वह कोई १० मिनट चला होगा कि डाक्टर साहब का बैगला नज़र आया। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं; मगर सज़ाटा छाया हुआ था। रोने-पीटने की आवाज़ भी न आती थी। भगत क कलेजा धक-धक करने लगा। कहीं मुझे बहुत देर तो नहीं हो गई। वह दौड़ने लगा। अपनी उम्र में वह इतना तेज़ कभी न दौड़ा था। वस, यही नालूम होता था मानो उसके पीछे मौत दौड़ी आ रही है।

५

दो बज गये थे। मेरमान चिदा हो गये थे। रोनेवालों में केवल आकाश के तारे रह गये थे। और सभी रो-रोकर थक गये थे। बड़ी उत्सुकता के साथ लोग रट-रटकर आकाश की ओर देखते थे, किसी तरह सुनह हो और लाश गंगा की गोद में दी जाए।

तबमा भगत ने द्वार पर पहुँचकर आवाज़ दी। डाक्टर साहब समझे कोई मरीज़ आया होगा। किसी और दिन उन्होंने उल आदमी को हस्तकार दिया होता; मगर आज तब निकल आये। देखा, एक दूध आदमी खड़ा है, कमर झुका हुआ, पीपला सुँह, पीठें तक सजोद हो गई थीं। लकड़ी के तारों काँप रहा था। बड़ी मजबूती से बोले—बधा है भाई, आज भी हमारे ऊपर ऐसी सुरीयत पड़ गई है कि कुछ कहते नहीं बनता, फिर कभी आना; एपर एक महीना तक तो शायद मैं किसी मरीज़ को न देख सकूँगा।

भगत ने कहा—सुन सुका हूँ बाबूजी; इसी लिए आया हूँ। भय बर्षों है, परा तुम्हें भी दिखा देंगे। भगवान् बड़ा कारसाज़ है, सुनदे ही भी खिला सकता है। और जाने, एकर भी लये दूदा सा जाय।

बाबूजी ने व्यथित स्वर में कहा—बता देल लो; मगर लीन-बना बरते हो गये। की कल होला भा हो सुवा। बरुतेर भादने-पूँकनेवाने देग-देखल बले गये।

डाक्टर साहब को जामा भी बरा होला, हाँ एते पर दूदा सा गई; एकर ले गये। भगत ने बाबा को एक सिगट तक देखा। तब सुनकरावा

बोला—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है बाबूजी। वाह ! नारायण चाहेंगे, तो आध घण्टे में भैया उठ बैठेंगे ! आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। ज़रा कहारों से कहिए, पानी तो भरें।

कहारों ने पानी भर-भरकर कैलास को नहलाना शुरू किया। पाइप बन्द हो गया था। कहारों की संख्या अधिक न थी; इसलिए मेहमानों ने अहाते के बाहर के कुएँ से पानी भर-भर कहारों को दिया। मृणालिनी कलसा लिये पानी ला रही थी। बूढ़ा भगत खड़ा मुसकिला-मुसकिलाकर मंत्र पढ़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है। जब एक बार मंत्र समाप्त हो जाता, तब वह एक जड़ी कैलास को सुँघा देता। इस तरह न जाने कितने घड़े कैलास के सिर पर डाले गये और न जाने कितनी बार भगत ने मंत्र फूँका। आश्विन जब उपा ने अपनी लाज-लाज आँखें खोलें, तो कैलास की लाल-लाल आँखें भी खुल गईं ? एक क्षण में उसने अँगड़ाई ली और पानी पीने को मॉगा। डाक्टर चड्ढा ने दौड़कर नारायणी को गले लगा लिया, नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलास के सामने आँखों में आँसू भरे पूछने लगी—अब कैसी तथीयत है ?

एक क्षण में चारों तरफ़ स़वर फैल गई। मित्रगण सुबारक़वाद देने आने लगे। डाक्टर साहब बड़े अद्वा-भाद से हर एक के सामने भगत का यश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे; मगर अन्दर जाकर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—अभी तो यहीं बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली, अपने पाम से तमाखू निकालकर भरी। यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुद्धिया के उठने से पहले घर पहुँच जाऊँ !

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब ने नारायणी से कहा—बुद्धा न जाने कहाँ चला गया। एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ ?

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूँगी ।

बड़दा—रात को तो मैंने नहीं पहचाना ; पर ज़रा साफ़ हो जाने पर पहचान गया । एक बार यह एक मरीज़ को लेकर आया था । मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज़ को देखने से इनकार कर दिया था । आज उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता । मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पैरों पर गिरकर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा । वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ । उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है । उसकी सृजनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब से जीवन-पर्यन्त मेरे नामने रहेगा ।

बोला—अभी कुछ नहीं विगड़ा है बाबूजी। वाह ! नारायण चाहेंगे, तो आध घण्टे में भैया उठ बैठेंगे ! आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। ज़रा कहारों से कहिए, पानी तो भरें।

कहारों ने पानी भर-भरकर कैलास को नहलाना शुरू किया। पाइप बन्द हो गया था। कहारों की संख्या अधिक न थी; इसलिए मेहमानों ने अहाते के बाहर के कुएँ से पानी भर-भर कहारों को दिया। मृणालिनी कलसा लिये पानी ला रही थी। बूढ़ा भगत खड़ा मुसकिला-मुसकिलाकर मंत्र पढ़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है। जब एक बार मंत्र समाप्त हो जाता, तब वह एक जड़ी कैलास को सुँघा देता। इस तरह न जाने कितने घड़े कैलास के सिर पर डाले गये और न जाने कितनी बार भगत ने मंत्र पूँका। आखिर जब उषा ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलें, तो कैलास की लाल-लाल आँखें भी खुल गईं ? एक क्षण में उसने अँगड़ाई ली और पानी पीने को माँगा। डाक्टर चढ़ा ने दौड़कर नारायणी को गले लगा लिया, नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलास के सामने आँखों में आँसू भरे पूछने लगी—अब कैसी तन्वीयत है ?

एक क्षण में चारों तरफ़ ख़बर फैल गई। मित्रगण मुबारकबाद देने आने लगे। डाक्टर साहब बड़े श्रद्धा-भाव से हर एक के सामने भगत का यश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे; मगर अन्दर जाकर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—अभी तो यहाँ बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली, अपने पास से तमाखू निकालकर भरी। यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले घर पहुँच जाऊँ !

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब ने नारायणी से कहा—बुढ़ा न जाने कहाँ चला गया। एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ ?

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूंगी ।

चट्टा—रात को तो मैंने नहीं पहचाना ; पर ज़रा साफ़ हो जाने पर पहचान गया । एक बार यह एक मरीज़ को लेकर आया था । मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज़ को देखने से इनकार कर दिया था । आज उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता । मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पैरों पर गिरकर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा । वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ । उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है । उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब से जीवन-पर्यन्त मेरे सामने रहेगा ।

फ़ातिहा

१

सरकारी अनाथालय से निकलकर मैं सीबा फ़ौज में भरती किया गया। मेरा शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा मेरे हाथ-पैर कहीं लम्बे और स्नायु-युक्त थे। मेरी लम्बाई पूरी छः फीट नौ इंच थी। पलटन में मैं 'देव' के नाम से विख्यात था। जब से मैं फ़ौज में भरती हुआ, तब से मेरी किस्मत ने भी पलटा खाना शुरू किया और मेरे हाथ से कई ऐसे काम हुए, जिनसे प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी आय भी बढ़ती गई। पलटन का हर एक जवान मुझे जानता था। मेजर सरदार हिस्मतसिंह की कृपा मेरे ऊपर बहुत थी; क्योंकि मैंने एक बार उनकी प्रणरक्षा की थी। इसके अतिरिक्त न जाने क्यों उनको देखकर मेरे हृदय में भक्ति और श्रद्धा का संचार होता। मैं यही समझता कि यह मेरे पूज्य हैं और सरदार साहब का भी व्यवहार मेरे साथ स्नेह-युक्त और मित्रता-पूर्ण था।

मुझे अपने माता-पिता का पता नहीं है, और न उनकी कोई स्मृति ही है। कभी-कभी जब मैं इस प्रश्न पर विचार करने बैठता हूँ, तो कुछ धुँधले-से दृश्य दिखाई देते हैं—बड़े-बड़े पहाड़ों के बीच में रहता हुआ एक परिवार, और एक स्त्री का मुख, जो शायद मेरी माँ का होगा। पहाड़ों के बीच में तो मेरा पालन-पोषण ही हुआ है। पेशावर से ८० मील पूर्व एक ग्राम है, जिसका नाम 'कुलाहा' है, वहीं पर एक सरकारी अनाथालय है। इसी में मैं पाला गया। यहाँ से निकलकर सीबा फ़ौज में चला गया। हिमालय के जलवायु से मेरा शरीर बना है, और मैं वैसा ही दीर्घायु और बर्बर हूँ; जैसे कि सीमाप्रान्त के रहनेवाले अफ़्रीदी, गिलज़ई, महसूदी आदि पहाड़ी कबीलों के लोग होते हैं। यदि उनके और मेरे जीवन में कुछ अन्तर है, तो वह

सभ्यता का। मैं थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेता हूँ, बातचीत कर लेता हूँ, अदब-क्रायदा जानता हूँ। छंटे-बड़े का लिहाज कर सकता हूँ; किन्तु मेरी आकृति वैसी ही है, जैसी कि किसी भी सरहदी पुरुष की हो सकती है।

कभी-कभी मेरे मन में यह इच्छा बलवती होती कि स्वच्छन्द होकर पहाड़ों की सैर करूँ; लेकिन जीविका का प्रश्न मेरी इच्छा को दबा देता। उस सूखे देग में खाने का कुछ भी ठिकाना नहीं था। वहीं के लोग एक रोटी के लिए मनुष्य की हथ्या कर डालते, एक कपड़े के लिए मुरदे की लाश चीर-फाड़कर फेंक देते और एक बन्दूक के लिए सरकारी क्रोज पर दाय्य मारने हैं। इसके अतिरिक्त उन जंगली जादियों का एक-एक मनुष्य मुझे जानता था और मेरे खून का प्यासा था। यदि मैं उन्हें मिल जाता, तो जूहर मेरा नाम-निशान छुनिया से मिट जाता। न जाने कितने अर्मादियों और गिराजद्यों को रैने मारा था, कितनों को पकड़-पकड़कर सरकारी जेलखाने में भर दिया था, और न सालूस उनके कितने गाँवों को जलाकर राख कर दिया था। मैं भी बहुत स्वर्क रहता, और जहाँ तक होता, एक स्थान पर एक रुपये से अधिक कभी न रहता।

१

एक दिन मैं मेजर सरदार हिन्सतसिंह के घर की ओर जा रहा था। उस समय दिन के दो बजे थे। साजकल हठी-सी थी; क्योंकि अभी हाल ही में वहाँ गाँव भरसीभूत कर दिये गये थे और जल्दी उनकी तरफ से कोई आसंका नहीं थी। हम लोग निश्चिन्त होकर राप्य और हँसी-खेल से दिन गुजारते। डेटे-डेटे झिल बहरा गया था, सिक्र मन बहलाने के लिए सरदार साहब के घर की ओर चला; किन्तु रास्ते में एक दुर्घटना हो गई। एक बड़ा अर्मादो, जो शर भी एक हिन्दुस्तानी जवान का तिर मरोड़ देने के लिए लाठी था, एक फौजी जवान से भिटा हुआ था। मेरे देखते-देखते उसने घरनी कमर से एक सेज्ज हरा निकाला और उसकी छाती में हुंसेद दिया। उस जवान के

पास एक कारतूसी बन्दूक थी, वस उसी के लिए यह सब लड़ाई थी। पलक मारते-मारते फ़ौजी जवान का काम तमाम हो गया और वृद्धा बन्दूक लेकर भागा। मैं उसके पीछे दौड़ा; लेकिन दौड़ने में वह इतना तेज़ था कि बात-की-बात में आँखों से ओझल हो गया। मैं भी वेतहाशा उसका पीछा कर रहा था। आख़िर सरहद पर पहुँचते-पहुँचते उससे बीस हाथ की दूरी पर रह गया। उसने पीछे फिरकर देखा, मैं अकेला उसका पीछा कर रहा था। उसने बन्दूक का निशाना मेरी ओर साधा। मैं फ़ौरन ही ज़मीन पर लेट गया और बन्दूक की गोली मेरे सामने पत्थर पर लगी। उसने समझा कि मैं गोली का शिकार हो गया। वह धीरे-धीरे सतर्क पदों से मेरी ओर बढ़ा। मैं साँस खींचकर लेट गया। जब वह विल्कुल मेरे पास आ गया, शेर की तरह उछलकर मैंने उसकी गरदन पकड़कर ज़मीन पर पटक दिया और छुरा निकालकर उसकी छाती में धुसेड़ दिया। अफ़्रीदी का जीवन-लीला समाप्त हो गई। इसी समय मेरी पलटन के कई लोग भी आ पहुँचे। चारों तरफ़ से लोग मेरी प्रशंसा करने लगे। अभी तक मैं अपने आपे में न था; लेकिन अब मेरी सुध-बुध वापस आई। न मालूम क्यों उस बुड्ढे को देखकर मेरा जी घबराने लगा। अभी तक न मालूम कितने ही अफ़्रीदियों को मारा था; लेकिन कभी भी मेरा हृदय इतना घबराय़ा न था। मैं ज़मीन पर बैठ गया, और उस बुड्ढे की ओर देखने लगा। पलटन के जवान भी पहुँच गये और मुझे घायल जानकर अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। धीरे-धीरे मैं उठा और चुपचाप शहर की ओर चला। सिपाही मेरे पीछे-पीछे उसी बुड्ढे की लाश घसीटते हुए चले। शहर के निवासियों ने मेरी जय-जयकार का तौता बाँध दिया। मैं चुपचाप मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर में घुस गया।

सरदार साहब उस समय अपने ख़ास कमरे में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर पूछा—क्यों उस अफ़्रीदी को मार आये ?

मैंने बैठते हुए कहा—जी हाँ, लेकिन सरदार साहब, न जाने क्यों मैं कुछ थोड़ा बुज़दिल हो गया हूँ।

सरदार साहब ने आश्चर्य से कहा—असदखी और बुज्जदिल ! यह दोनों एक जगह होना नामुमकिन है ।

सैने उठते हुए कहा—सरदार साहब, यहाँ तबीयत नहीं लगती, उठकर बाहर बरामदे में बैठिए । न सालूम क्या मेरा दिल बबझाता है ।

सरदार साहब उठकर मेरे पास आये और स्टेड से मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—अबद, तुम दौड़ते-दौड़ते थक गये हो, और कोई बात नहीं है । अच्छा चलो, बरामदे में बैठें । शाम की देर होना तुम्हें ताजा कर देगी ।

सरदार साहब और मैं, दोनों बरामदे में जाकर कुर्तियाँ पर बैठ गये । शहर के मौसुहाने पर अभी बृद्ध की लाज रची थी, और उसके चारों ओर भीड़ लगी हुई थी । बरामदे से जब मुझे बैठे हुए देखा, तो लोग मेरी ओर हंशारा करने लगे । सरदार साहब ने यह दृश्य देखकर कहा—अबदखी, देखो, लोगों की निगाह में तुम कितने ऊँचे हो । तुम्हारी बीरता की यही का बच्चा-बच्चा सराहता है । अब भी तुम कहते हो कि मैं बुज्जदिल हूँ ।

सैने मुस्कराकर कहा—जब से इस बुड्डे की जारा है, तब से मेरा दिल मुझे धिक्कार रहा है ।

सरदार साहब ने हँसकर कहा—शयोंकि तुमने अपने से निर्दल हो साया है ।

सैने अपनी दिलजमई करते हुए कहा—मुमकिन है ऐसा ही हो ।

इसी समय एक अग्रीची रमली धीरे-धीरे आकर सरदार साहब के मकान के सामने खड़ा हो गई । वहाँ ही सरदार साहब ने देखा, उनका लुँट सफेद पड़ गया । उनकी भयभीत दृष्टि उसकी ओर से फिरछर मेरी ओर हो गई । मैं भी आश्चर्य से उनके लुँट की ओर निहारने लगा । उस रमली का-ना सुगठित शरीर सरदों का भी कम होता है । साकी रंग के मोटे कपड़े का पाव-जाना और लाले रंग का मोटा कुरता पहने हुए थी । बलूची औरतों की तरह तिर पर सहाल बाँध रखा था । रंग चमक रहा और बौद्धन की सामा फूट-फूटकर बाहर निकली पड़ती थी । इसी समय उसकी छाँहों में ऐसी भयंकरता

थी, जो किसी के दिल में भय का सञ्चार करती। रमणी की आँखें सरदार साहब की ओर से फिरकर मेरी ओर आईं और उसने यों घूरना शुरू किया कि मैं भी भयभीत हो गया। रमणी ने सरदार साहब की ओर देखा और फिर ज़मीन पर थूक दिया और फिर मेरी ओर देखती हुई धीरे-धीरे दूसरी ओर चली गई।

रमणी को जाते देखकर सरदार साहब के जान में जान आई। मेरे सिर पर से भी एक बोझ हट गया।

मैंने सरदार साहब से पूछा—क्यों, क्या आप इसे जानते हैं? सरदार साहब ने एक गहरी ठंडी साँस लेकर कहा—हाँ, बखूबी। एक समय था, जब यह मुझ पर जान देती थी और दास्तव में अपनी जान पर खेलकर मेरी रक्षा भी की थी; लेकिन अब इसको मेरी सूरत से नफ़रत है। इसी ने मेरी स्त्री की हत्या की है। इसे जब कभी देखता हूँ, मेरे होश हवास काफ़ूर हो जाते हैं, और वही भयानक दृश्य मेरी आँखों के सामने नाचने लगता है।

मैंने भय-विह्वल स्वर में पूछा—सरदार साहब, उसने मेरी ओर भी तो बड़ी भयानक दृष्टि से देखा था। न-मालूम क्यों मेरे भी रोपूँ लड़े हो गये थे।

सरदार साहब ने सिर हिलाते हुए बड़ी गम्भीरता से कहा—असदख़ाँ, तुम भी होशियार रहो। शायद इस बूढ़े अफ़ाँदी से इसका भी सम्पर्क है। मुमकिन हो यह उसका भाई या बाप हो। तुम्हारी ओर उसका देखना कोई सामान्य रखता है। बड़ी भयानक स्त्री है।

सरदार साहब की बात सुनकर मेरी नस-नस काँप उठी। मैंने बातों का सिलसिला दूसरी ओर फेरते हुए कहा—सरदार साहब, आप इसको पुलिस के हवाले क्यों नहीं कर देते। इसको फाँसी हो जायगी।

सरदार साहब ने कहा—भाई असदख़ाँ, इसने मेरे प्राण बचाये थे और शायद अब भी मुझे चाहती है। इसकी कथा बहुत लम्बी है। कभी अवकाश मिलेगा, तो कहूँगा।

सरदार की बातों से मुझे भी कुतूहल हो रहा था। मैंने उनसे वह

वृत्तान्त सुनाने के लिए आग्रह करना शुरू किया। पहले तो उन्होंने टालना चाहा; पर जब मैंने बहुत जोर दिया तो विवश होकर बोले—असद, मैं तुम्हें अपना भाई समझता हूँ; इसलिए तुमसे कोई परदा न रखूंगा।
लो सुनो—

असदखॉ, पाँच साल पहले मैं इतना बृद्ध न था, जैसा कि अब दिखाई पड़ता हूँ। इस समय मेरी आयु ४० वर्ष से अधिक नहीं है। एक भी बाल सफेद न हुआ था और उस समय तुममें इतना बल था कि दो जवानों को मैं लड़ा देता। जर्मनों से मैंने मुठभेड़ ली है और न गालून कितनों को यम-लोक का रास्ता बतला दिया। जर्मन-युद्ध के बाद तुम्हें यहाँ लाना पाना पर काली एलटन का सेजर बनाकर भेजा गया। जब पहले-पहल मैं यहाँ आया, तो यहाँ पर कठिनाइयों सामने आईं; लेकिन मैंने एकही झरना भी परवाह न की और धीरे धीरे उन सब पर विजय पाई। सबसे पहले यहाँ आकर मैंने पशुओं को लाना शुरू किया। पशुओं के बाद धीरे धीरे इंसानों की, यहाँ तक कि मैं उनको खेती आसानी और सुहाविलों के साथ बोलने लगा; फिर इसके बाद कई आदिमियों की टोलियाँ लगाकर देश का अन्तर्भाग भी दान डाला। इस पढ़ताल से कई बार मैं मरते-मरते बचा; किन्तु सब कठिनाइयों से लड़ते हुए मैं यहाँ पर सहज-सहज रहने लगा। अब इंसानों में मेरी हाथ से ऐसे-ऐसे काम हो गये, जिससे सरकार में मेरी बड़ी मानवरी और प्रशिक्षा भी हो गई। एक बार बर्लिन हेमिलटन की सैन्य-संस्था को मैं लकड़ों द्वारा लाया था और कितने ही देशी आदिमियों और धौरनों के प्राण मैंने बचाये हैं। यहाँ पर आने के तीन साल बाद से मेरी कठिनाई आरम्भ होती है।

एक रात ली मैं अपने 'कैम्प' में बैठा हुआ था। अचानक से लड़ाई हो रही थी। दिन को भू-भे-भे-भे वैदिक शक्ति पड़े हुए थे। सोम में मन्त्राटा था। लड़े-लड़े तुम्हें भी जोड़ जा गई।

तुम्हें तो देना कि
छाती पर... जिसकी आयु मेरी आयु से लगभग दूनी होगी—
सबसे है और मेरी छाती में तुम्हें चुभने ही वाला है। मैं पूरी तरह से

उसके अधीन था, कोई भी वचने का उपाय न था ; किन्तु उस समय मैंने बड़े ही धैर्य से काम लिया और पशतो भाषा में कहा—मुझे मारो नहीं, मैं सरकारी फ़ौज में अफ़सर हूँ, मुझे पकड़ ले चलो, सरकार तुमको रुपया देकर मुझे छुड़ायेगी ।

ईश्वर की कृपा से मेरी बात उसके मन में बैठ गई । कमर से रस्सी निकालकर मेरे हाथ-पैर बाँधे और फिर कन्धे पर बोझ की तरह लादकर खेमे से बाहर आया । चाहर मार-काट का वाज़ार गर्म था । उलूने एक विचित्र प्रकार से चिल्लाकर कुछ कहा और मुझे कंधे पर लादे वह जंगल की ओर भागा । यह मैं कह सकता हूँ कि उसको मेरा बोझ कुछ भी न मालूम होता था और बड़ी तेज़ी से भागा जा रहा था । उसके पीछे-पीछे कई आदमी, जो उसी के गिरोह के थे, लूट का माल लिये हुए भागे चले आ रहे थे ।

प्रातःकाल हम लोग एक तालाब के पास पहुँचे । तालाब बड़े-बड़े पहाड़ों से घिरा हुआ था । उसका पानी बड़ा निर्मल था और जंगली पेड़-हथर-उधर उग रहे थे । तालाब के पास पहुँचकर हम सब लोग ठहरे । बुद्धे ने, जो वास्तव में उस गिरोह का सरदार था, मुझे पत्थर पर डाल दिया । मेरी कमर में बड़ी ज़ोर से चोट लगी, ऐसा मालूम हुआ कि कोई हड्डी टूट गई है ; लेकिन ईश्वर की कृपा से हड्डी टूटी न थी । सरदार ने मुझे पृथ्वी पर डालने के बाद कहा—क्यों, कितना रुपया दिलायेगा ?

मैंने अपनी वेदना दबाते हुए कहा—पाँच सौ रुपये ।

सरदार ने मुँह बिगाड़कर कहा—नहीं, इतना कम नहीं लेगा । दो हज़ार से एक पैसा भी कम मिला, तो तुम्हारी जान की ख़ैर नहीं ।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—सरकार इतना रुपया काले आदमी के लिए नहीं ख़र्च करेगी ।

सरदार ने छुरा चाहर निकालते हुए कहा—तब फिर क्यों कहा था कि सरकार इनाम देगी ! जे, तो फिर यहीं मर ।

सरदार छुरा लिये मेरी तरफ़ बढ़ा ।

मैं बघड़ाकर बोला—अच्छा, सरदार, मैं तुमको दो हजार दिलावा दूँगा । सरदार रुक गया और बड़ी जोर से हँसा । उसकी हँसी की प्रतिध्वनि ने निर्जीव पहाड़ों को भी कँसा दिया । मैंने मन-ही-मन कहा—बड़ा भयानक आदमी है ।

गिरोह के दूसरे आदमी अपनी-अपनी छूट का माल सरदार के सामने रखने लगे । उसमें कई बंदूकें, कारतूस, रोटियों और कपड़े थे । मेरी भी तलाशी ली गई । मेरे पास एक छः पावर का तंबाका था । तंबाका पाकर सरदार उछल पड़ा, और उसे फिरा-फिराकर देखने लगा । वहीं पर उसी समय हिरसा-बॉट शुरू हो गया । बराबर-बराबर का दिग्मा लगा ; लेकिन मेरा रिवाल्वर उसमें नहीं शामिल किया गया । वह सरदार साहब की खास चीज़ थी ।

घोड़ी दूर विधाम करने के बाद, फिर वापस शुरू हुई । इस बार मेरे पैर खोल दिये गये और साध-साध चलने को कहा—मेरी आँखों पर पट्टी भी बाँध दी गई, ताकि मैं रास्ता न देख लूँ । मेरे हाथ रस्ती में दँधे हुए थे, और हस्तका एक तिरा एक अश्लीली के हाथ में था ।

चलते-चलते मेरे पैर दुखने लगे ; लेकिन उनकी संजिद पूरी न हुई । तिर पर जेठ का सूरज चमक रहा था, पैर जले जा रहे थे, प्यास से गला सूखा जा रहा था ; लेकिन वे बराबर चले जा रहे थे । वे आपस में बातें करते जाते थे ; लेकिन जब मैं उनकी एक बात भी न समझ पाता । कभी-कभी एक-आध शब्द तो समझ जाता ; लेकिन बहुत अंशों से मैं कुछ भी न समझ पाता था । वे लोग इस समय अपनी विजय पर प्रसन्न थे, और एक अश्लीली ने अपनी भाषा में एक गीत गाना शुरू किया । गीत बड़ा ही अच्छा था ।

असहर्कों ने पूछा—सरदार साहब, वह गीत क्या था ?

सरदार साहब ने कहा—इस गीत का भाव-चाद है । भाव यह है कि एक अश्लीली जा रहा है, तो उसकी खी बहती है—वहाँ जाते हो !

युवक उत्तर देता है—जाते हैं तुम्हारे लिए रोटी और कपड़ा लाने ।

स्त्री पूछती है—और कुछ अपने बच्चों के लिए नहीं लाओगे ?

युवक उत्तर देता है—बच्चों के लिए बन्दूक लाऊँगा, ताकि जब वह बड़ा हो, तो वह भी लड़े और अपनी प्रेमिका के लिए रोटी और कपड़ा ला सके ।

स्त्री कहती है—यह तो कहो, क्या आओगे ?

युवक उत्तर देता है—आऊँगा तभी, जब कुछ जीत लाऊँगा, नहीं तो वहीं मर जाऊँगा ।

स्त्री कहती है—शाबास, जाओ, तुम वीर हो, तुम जरूर सफल होगे ।

गीत सुनकर मैं सुगंध हो गया । गीत समाप्त होते-होते हम लोग भी रुक गये । मेरी आँखें खोली गईं । सामने बड़ा-सा मैदान था और चारों ओर गुफाएँ बनी हुई थीं, जो उन्हीं लोगों के रहने की जगह थी ।

फिर मेरी तलाशी ली गई और इस दफ्ते सब कपड़े उतरवा लिये गये, केवल पायजामा रह गया । सामने एक बड़ा-सा शिलालयड रखा हुआ था । सब लोगों ने मिलकर उसे हटाया और मुझे उसी ओर ले चले । मेरी आत्मा काँप उठी । यह तो जिन्दा कब्र में डाल देंगे । मैंने बड़ी ही वेदनापूर्ण दृष्टि से सरदार की ओर देखकर कहा—सरदार, सरकार तुम्हें सपना देगी । मुझे मारो नहीं ।

सरदार ने हँसकर कहा—तुम्हें मारता कौन है, क्रोध किया जाता है । इस घर में बन्द रहोगे, जब सपना आ जायगा, छोड़ दिये जाओगे ।

सरदार की बात सुनकर मेरे प्राण में प्राण आये । सरदार ने मेरी पाकेट-बुक और पेंसिल सामने रखते हुए कहा—तो, इसमें लिख दो । अगर एक पैसा भी कम आया, तो तुम्हारी जान की खर नहीं ।

मैंने कमिश्नर साहब के नाम एक पत्र लिखकर दे दिया । उन लोगों ने मुझे उसी अन्ध-कूप में लटका दिया और रस्सी खींच ली ।

४

सरदार साहब ने एक लम्बी साँस ली और कहना शुरू किया—असदख्तों जिस समय मैं उस कुएँ में लटकाया जा रहा था, मेरी अन्तरात्मा काँप रही

थी। नीचे घटाटोप अन्धकार की जगह हस्की चाँदनी छाई हुई थी। भीतर से गुफा न बहुत छोटी और न बहुत बड़ी थी। फर्श खुदुरा था, ऐसा मालूम होता था कि बरसों यहाँ पर पानी की धारा गिरी है और यह गढ़ा तब जाकर तैयार हुआ है। पत्थर की मोटी दीवार से वह ५ विरा हुआ था और उसमें जहाँ-तहाँ छेद थे, जिनसे प्रकाश और वायु आती थी। नीचे पहुँचकर मैं अपनी दृशा का हेर-फेर सोचने लगा। दिक्कत बहुत घबराता था। वह काल-कोठरी की यन्त्रणा भोगना भी भाग्य में विधाता ने लिखा दिया था।

धोरे-धोरे सन्ध्या का आगमन हुआ। उन लोगों ने अभी तक मेरी कुछ खोज-खबर न ली थी। भूख से आत्मा प्यासल हो रही थी। बार-बार विधाता और अपने को कोसता। जब सतुपर निपटारा हो जाता है, तो विधाता को कोसता है।

अन्त में एक छेद से चार बड़ी-बड़ी रोटियों हिस्से में बाहर से फलीं। जिस तरह हुआ एक रोटी के टुकड़े पर बैठता है, वैसे ही मैं भी दोप और उठाकर उस छेद की ओर देखने लगा; लेकिन फिर किसी के कुछ न फेंका, और न कुछ आदेश ही मिला। मैं बैठकर रोटियों खाने लगा। थोड़ी देर बाद उनी छेद पर एक लोहे का प्याला रख दिया गया, जिसमें पानी भरा हुआ था। मैंने परमात्मा को धन्यवाद देकर पानी उठाकर पिना। उस आत्मा कुछ वृक्ष हुई, तो कहा—मेरा पानी और चरिद।

दूसरे पर दीवार की उस ओर एक भँपटा हँसी की प्रतिध्वनि सुनाई दी और हिस्से में खटखटाते हुए स्वर में कहा—पानी पार कल मिलेगा। प्याला दे दो, नहीं तो बत भी पानी नहीं मिलेगा।

क्या करता, हाकर प्याला वहीं पर रख दिया।

एक प्रकार बड़े दिन बीत गये। जिस दोनों समय चार रोटियाँ और एक प्याला पानी मिले जाता था। धीरे-धीरे मैं भी इस दुःख दीवार का पार हो गया। निर्वृत्ता कर उठनी न सकेली। उनी-उनी मैं अपनी

भापा में और कभी-कभी पशतो में गाता । इससे मेरी तबियत कुछ बहल जाती और हृदय भी शान्त हो जाता ।

एक दिन रात्रि के समय मैं एक पशतो गीत गा रहा था । मजनु भुलसानेवाले बगूलों से कह रहा था—तुममें क्या बढ हरारत नहीं है, जो काफलों को जलाकर खाक कर देती है । धाम्निर वह गरमी मुझे क्यों नहीं जलाती ? क्या इसलिए कि मेरे अन्दर खुद एक ज्वाला भरी हुई है ?

देखो, जब लैला हूँदती हुई यहाँ आवे, तो मेरा शरीर बालू से ढक देना नहीं तो शीशे की तरह लैला का दिल टूट जायगा ।

मैंने गाना बन्द कर दिया । उसी समय छेद से किसी ने कहा—कैदी, फिर तो गाओ ।

मैं चौंक पड़ा । कुछ खुशी भी हुई, कुछ आश्चर्य भी ; पूछा—तुम कौन हो ?

उसी छेद से उत्तर मिला—मैं हूँ तूरया, सरदार की लड़की ।

मैंने पूछा—क्या तुमको यह गाना पसन्द है ?

तूरया ने उत्तर दिया—हाँ, कैदी गाओ, मैं फिर सुनना चाहती हूँ ।

मैं हर्ष से गाने लगा । गीत समाप्त होने पर तूरया ने कहा—तुम रोज़ यही गीत मुझे सुनाया करो । इसके बदले मैं तुमको और रोटियाँ और पानी दूँगी ।

तूरया चली गई । इसके बाद मैं सदा रात के समय वही गीत गाता, और तूरया सदा दीवार के पास आकर सुनती ।

मेरे मनोरञ्जन का एक मार्ग और निकल आया ।

धारे-धारे एक मास बीत गया ; पर किसी ने अभी तक मेरे छुड़ाने के लिए रुक्या न भेजा । ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते, मैं अपने जीवन से निराश होता जाता ।

ठीक एक महीने बाद सरदार ने आकर कहा—कैदी, अगर कल तक रुक्या न आवेगा, तो तुम मार डाले जाओगे । मैं अब रोटियाँ नहीं खिला सकता ।

मुझे जीवन की कुछ आशा न रही। उस दिन न मुझसे खाया गया और न कुछ पिया ही गया। रात हुई, फिर रोटियो फेंक दी गई; लेकिन खाने की इच्छा नहीं हुई।

निश्चित समय पर तूरया ने आकर कहा—कैदी, गाना गाओ।

उस दिन मुझे कुछ श्रच्छा न लगता था। मैं चुप रहा।

तूरया ने फिर कहा—कैदी, क्या सो गया ?

मैंने बड़े ही मलिन स्वर में कहा—नहीं, आज से सोकर क्या करूँ, कल ऐसा खोजूँगा कि फिर जागना न पड़ेगा।

तूरया ने प्रश्न किया—क्यों, क्या सरदार रुपया न भेजेगी ?

मैंने उत्तर दिया—भेजेगी तो ; लेकिन कल तो मैं मार जाऊँगा, मेरे मरने के बाद रुपया भी आया, तो मेरे किस काम का !

तूरया ने सान्त्वना-पूर्ण स्वर में कहा—श्रच्छा, तुम गाओ, मैं कल तुम्हें मरने न दूँगी।

मैंने गाना शुरू किया। जाते समय तूरया ने पूछा—कैदी, तुम बटहरे में रहना पसन्द करते हो ?

मैंने सतर्प उत्तर दिया—हाँ, कितनी तरह इस नरक से तो बुरकारा मिले।

तूरया ने कहा—श्रच्छा, कल मैं जवा से कहूँगी।

दूखरे ही दिन मुझे उस सम्स्कृति से बाहर निकाला गया। मेरे दोनों पैर दो मोटी शहतीरों के छेदों में बन्द कर दिये गये। और वह काट की ही धातु से प्राकृतिक गड्ढों में कस दिये गये।

सरदार ने मेरे पास आकर कहा—कैदी, पन्द्रह दिन की श्रवण और दी जाती है, इसके बाद तुम्हारी गर्दन तन से चलान कर दी जायगी। आज दूसरा खत घरने घर को लिखो। अगर ईद तक रुपया न आया, तो तुम्हीं से हलाल किया जायगा।

मैंने दूसरा पत्र लिखकर दे दिया।

सरदार के जाने के बाद तूरया आई। वह बड़ी रमणी थी, जो जानी गई

है। यही उस सरदार की लड़की थी। यही मेरा गाना सुनती थी और इसी ने सिकारिश करके मेरी जान बचाई थी।

तूरया आकर मुझे देखने लगी। मैं भी उसकी ओर देखने लगी।

तूरया ने पूछा—कैदी, वर में तुम्हारे कौन-कौन हैं ?

मैंने बड़े ही कातर स्वर में कहा—दो छोटे-छोटे बालक और कोई नहीं ?

मुझे मालूम था कि शफ़ाई बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।

तूरया ने पूछा—उनकी माँ नहीं है ?

मैंने केवल दया उपजाने के लिए कहा—नहीं, उनकी माँ मर गई है। वे अकेले हैं। मालूम नहीं जीते हैं या मर गये; क्योंकि मेरे सिवाय उनकी देख-रेख करनेवाला और कोई न था !

कहते-कहते मेरी आँखों में आँसू भर आये। 'तूरया की आँखें सूखी न रहीं। तूरया ने अपना आधेग सँभालते हुए कहा—तो तुम्हारे कोई नहीं हैं, बच्चे अकेले हैं। वे बहुत रोते होंगे।

मैंने अन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—हाँ, रोते जरूर होंगे। कौन जानता है, शायद मर भी गये हों ?

तूरया ने बात काटकर कहा—नहीं, अभी मरे न होंगे। अच्छा तुम रहते कहाँ हो ? मैं जाकर पता लगा आऊँगी।

मैंने अपने घर का पता बता दिया। उसने कहा—उस जगह मैं तो कई बार हो आई हूँ। बाजार से सौदा लेने मैं अक्सर जाती हूँ, अब जब जाऊँगी तो तुम्हारे बच्चों की भी खबर ले आऊँगी।

मैंने संशंकित हृदय से पूछा—कब जाओगी ?

उसने कुछ सोचकर कहा—उस जुमेरात को जाऊँगी। अच्छा, तुम वहीं गीत गाओ।

मैंने आज बड़ी उमंग और उत्साह से गाना शुरू किया। मैंने आज देखा कि उसका असर तूरया पर कैसा पड़ता है। उसका शरीर काँपने लगा, आँखें उमड़वा आईं, गाल पीले पड़ गये और वह काँपती हई बैठ गई। उसकी

दशा देखकर मैंने दूने उरसाह से गाना शुरू किया और अन्त में कहा—
तूरया, अगर मैं मारा जाऊँ, तो मेरे बच्चों को मेरे सरने की छबर देना।

मेरी बात का पूरा असर पड़ा। तूरया ने भरपूर हुप स्वर में कहा—
कैदी, तुम मरोगे नहीं। मैं तुम्हारे बच्चों के लिए तुम्हें छोड़ दूंगी।

मैंने निराश होकर कहा—तूरया, तुम्हारे छोड़ देने से भी मैं बच
सकता। इस जंगल में मैं भटक-भटककर मर जाऊँगा, और फिर तो तुम पर भी
सुसीबत आ सकती है। अपनी जान के लिए तुमको सुसीबत में न डालूँगा।

तूरया ने कहा—मेरे लिए तुम चिन्ता न करो। मेरे डपर कोई शक न
करेगा। मैं सरदार की लड़की हूँ जो काहुँगी वही सब मान लेंगे; लेकिन
प्या तुम जाकर रुपया भेज दोगे ?

मैंने प्रसन्न होकर कहा—हाँ तूरया, मैं रुपया भेज दूँगा।

तूरया ने जाते हुए कहा—तो मैं भी तुम्हें तुटकारा दिला दूँगी।

इस घटना के बाद तूरया सदैव मेरे बच्चों के सम्बन्ध में चाने करती।
असदखों, लचसुच इन अम्रादियों को बच्चे बहुत प्यार होते हैं। विधाता ने
यदि उन्हें दरदर हिंसक पशु बनाया है, तो अनुपप्रेक्षित प्रवृत्ति से वंचित भी
नहीं रखा है। आखिर जुमेरात आई और अभी तक सरदार वापस न
आया। न कोई उस गिरोह का छावमी ही वापस आया। उस दिन सन्ध्या
समय तूरया ने आकर कहा—कैदी, अब मैं नहीं आ सकती; क्योंकि मेरा
पिता अभी तक नहीं आया। यदि कल भी न आया, तो मैं तुम्हें रात को
छोड़ दूँगी। तुम अपने बच्चों के पास जाना; लेकिन देखो, रुपया भेजना न
भूलना। मैं तुम पर विरवास करती हूँ।

मैंने उस दिन बड़े उरसाह से गाना गाया। साधी रात तक तूरया सुनती
रही, फिर तोने चली गई। मैं भी ईश्वर से मनाना रहा कि कल और सरदार
न आये। रात में बड़े-बड़े मेरा पैर बिलकुल निरुत्साह हो गया था। तनाम
गरीर हुआ रहा था। इससे तो मैं काल-कोटरी में ही शक्य था; क्योंकि
वहाँ तो हाथ-पैर ठिंका-ठिंका सबका था।

दूसरे दिन भी गिराँह वापस न आया। उस दिन तूरया बहुत चिन्तित थी। शाम को आकर तूरया ने मेरे पैर खोलकर कहा—कैदी, अब तुम जाओ, चलो, मैं तुम्हें थोड़ी दूर पहुँचा दूँ।

थोड़ी देर तक मैं अवश्य लेटा रहा। धीरे-धीरे मेरे पैर ठीक हुए और ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ मैं तूरया के साथ चल दिया।

तूरया को प्रसन्न करने के लिए मैं रास्ते भर गीत गाता आया। तूरया बार-बार सुनती और बार-बार रोती। आधी रात के करीब मैं तालाब के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचकर तूरया ने कहा—साँधे चले जाओ, तुम पेशावर पहुँच जाओगे। देखो, होशियारी से जाना, नहीं तो कोई तुम्हें अपनी गोली का शिकार बना डालेगा। यह लो, तुम्हारे कपड़े हैं; लेकिन रुपया ज़रूर भेज देना। तुम्हारी जमानत मैं लूँगी। अगर रुपया न आया, तो मेरे भी प्राण जायेंगे, और तुम्हारे भी। अगर रुपया आ जायगा, तो कोई भी अफ़ाँदी तुम पर हाथ न उठायेगा, चाहे एक बार तुम किसी को मार भी डालो। जाओ ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें और तुमको अपने वच्चों से मिलावें।

तूरया फिर टहरी नहीं। गुनगुनाती हुई लौट पड़ी। रात दोपहर बीत चुकी थी। चारों ओर भयानक निरतब्धता छाई हुई थी, केवल वायु नयन-साँय करती हुई बह रही थी, आकाश के बीचोबीच चन्द्रमा अपनी साँलहों कला से चमक रहा था। तालाब के तट रुकना सुरक्षित न था। मैं धीरे धीरे दक्षिण की ओर बढ़ा। बार-बार चारों ओर देखता जाता था। ईश्वर की कृपा से प्रातःकाल होते-होते मैं पेशावर की सरहद पर पहुँच गया।

सरहद पर सिपाहियों का पहरा था। मुझे देखते ही तमाम फ़ौज भर में हलचल मच गई। सभी लोग मुझे मरा समझे हुए थे ! जीता-जागता लौटा हुआ देखकर सभी प्रसन्न हो गये।

कर्नल हैमिलटन साहब भी समाचार पाकर उसी समय मिलने आये और सब हाल पढ़कर कहा—मेजर साहब, मैं आपको मरा हुआ समझता था। मेरे पास तुम्हारे दो पत्र आये थे; लेकिन मुझे स्वप्न में भी विश्वास

न हुआ था कि वे तुम्हारे लिखे हुए हैं। मैं तो उन्हें जाली समझता था। ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम जीते बचकर आ गये।

मैंने कर्नल माह्व को धन्यवाद दिया और सन-ही-सन कहा—काले घादसी का लिखा हुआ जाली था और कहीं अगर गौरा घादसी लिखता, तो दो की चीज होते, चार हजार दरवा पड़ते जाते। दिवने ही गोंद जता दिरे जाते और न आने क्या-क्या न होता।

मैं चुपचाप अपने घर आया। काल-दरवाँ तो पाकर आता मस्तुष्ट हुई। उसी दिन एक दिवानी मस्तुष्ट ने द्वारा दो हजार दरवा लूया के पास भेज दिये।

५

सरदार ने एक रंटी लीन लेकर कहा—सरदरवाँ अभी मेरी कठानी समाप्त नहीं हुई। अभी तो तुम्हारा भाग बचनेप ही है। यहाँ आकर मैं धीरे-धीरे अपनी सब सुखीबतें भूल गया; लेकिन लूया की न भूल सका। लूया की लूया से ही मैं अपनी री और वहाँ से भिन्न आया था, यही नहीं, जीवन भी पाया था, फिर मला मैं उसे कैसे भूल जाता।

सानी और लालों गिन गये। मैं लूया की और न उसके बाद की ही देखा। लूया ने आगे से लिप्ट कहा भी; लेकिन वह आई नहीं। वहाँ से आकर मैंने अपनी री को उसके सामने भेज दिया था; क्योंकि लूयाल था कि माह्व लूया आये, तो फिर मैं भूल नसूँगा; लेकिन जब तीन साल बीत गये और लूया न आई, तो मैं निश्चित हो गया और री को लूयाके से हला किया। उस लीन लूया-दरवाँ दिन बाद रहे थे कि लूयाल फिर हुईला की री आई।

एक दिन लूयाके सतम इमी दरामदे में बैठा हुआ अपनी री मे दाँव पर रहा था कि किसी ने लूया का दरवाजा मटकवाया। लूया ने दरवाजा खोल दिया और देखकर इमी दरवाँ हुई एक काहुनी-घोसल लान लकी आई। उसने दरामदे में आकर बिहल परकीभाषा में पूछा—सरदार मारव कहीं हैं ?

मैंने कमरे के भीतर आकर पूछा—तुम कौन हो, क्या चाहती हो ?

उस स्त्री ने कुछ मूँगे निकालते हुए कहा—यह मूँगे मैं बेचने के लिए आई हूँ, खरीदिएगा ?

यह कहकर उसने बड़े-बड़े मूँगे निकालकर मेज पर रख दिये ।

मेरी स्त्री भी मेरे साथ ही कमरे के भीतर आई थी, वह मूँगे उठाकर देखने लगी । उस काबुली स्त्री ने पूछा—सरदार साहब, यह कौन है आपकी ! मैंने उत्तर दिया—मेरी स्त्री है, और कौन है ।

काबुली स्त्री ने कहा—आपकी स्त्री तो मर चुकी थी, क्या आपने दूसरा विवाह किया है ?

मैंने रोषपूर्णा स्वर में कहा—चुप बेवकूफ़ कहीं की, तू मर गई होगी ।

मेरी स्त्री पश्तो नहीं जानती थी, वह तन्मय होकर मूँगे देख रही थी ।

किन्तु मेरी बात सुनकर न मालूम क्या काबुली औरत की आँखें चमकने लगीं । उसने बड़े ही तीव्र स्वर में कहा—हाँ, बेवकूफ़ न होती, तो तुम्हें छोड़ कैसे देती ? दोज़ख़ी पिस्ले, मुझसे मूठ बोला था । ले, अगर तेरी स्त्री तब न मरी थी, तो अब मर गई !

कहते-कहते शेरनी की तरह लपककर उसने एक तेज़ छुरा मेरी स्त्री की छाती में घुसेड़ दिया । मैंने उसे रोकने के लिए आगे बढ़ा ; लेकिन वह कूदकर आँगन में चली गई और बोली—अब पहचान ले, मैं तुम्हारा हूँ । मैं आज तेरे घर में रहने के लिए आई थी । मैं तुझसे विवाह करती और तेरी होकर रहती । तेरे लिए मैंने बाप, घर, सब कुछ छोड़ दिया था ; लेकिन तू मूठ है, मक्कार है । तू अब अपनी बीबी के नाम को रो, मैं आज से तेरे नाम को रोऊँगी । यह कहकर वह तेज़ा से नाँच चली गई ।

अब मैं अपनी स्त्री के पास पहुँचा । छुरा ठीक हृदय में लगा था । एक ही वार ने उसका काम-तमाम कर दिया था । डाक्टर बुलवाया ; लेकिन वह मर चुकी थी ।

कहते-कहते सरदार साहब की आँखों में आँसू भर आये । उन्होंने अपनी

भीगी हुई आँसों को पोंछकर कहा—असदखों, मुझे स्वप्न में भी हनुमान न था कि तूरया हूतनी पिशाच-हृदय हो सकेगी। अंगर में पहले उसे पहचान लेता, तो यह आक्रमण न आने पाती, लेकिन कमरे में अन्वकार था, और इसके अतिरिक्त मैं उयकी ओर से निराम हो चुका था।

तब से फिर कभी तूरया नहीं आई। अब जब कभी मुझे देखनी है, तो मेरी ओर देखकर नागिन की भोगि पुसकारती हुई चली जाती है। उसे देण-पर मेरा हृदय कॉपने लगता है और मैं अचर हो जाता हूँ। कई बार कोशिश की, मैं उसे पकड़वा दूँ, लेकिन उसे देण-पर में विह्वल निराम हो जाता हूँ। हाथ पैर बेहानु हो जाते हैं, मेरी लारी पीरला हवा हो जाती है।

यही नहीं, तूरया का सोह भय भी मेरे ऊपर है। मेरे बच्चों को हमेशा वह कोई-न-कोई बहुमूल्य चीज़ दे जाती है। जिस दिन बच्चे उसे नहीं मिलते, दरवाज़े के भीतर पोंक जाती है। उनमें एक कासक का दुलदा देवा होता है, जिसमें लिखा रहता है—सरदार साहब के बच्चों के लिए।

मैं अभी तक उस खी को नहीं समझ पाया। जिनका ही हमसभने का यत्न करता हूँ, उतनी ही वह कठिन होती जाती है। नहीं समझ में आता है कि वह सामग्री है या राक्षसी!

हनी लगभग सरदार साहब के करके ने आकर कहा—देखो, बारी चौगत वह सोने का तारीज दे गई है।

सरदार साहब ने मेरी ओर देखकर कहा—देखा, आसदखों, मैं तुमसे कहता न था। देखो, आज भी वह तारीज दे गई। न सामान्य जिन दे ही तारीज और जिनकी ही दूसरी चीज़ें, पाईन और निजाल को दे गई होगी। बताता हूँ कि तूरया बारी ही विचित्र तो है।

३

सरदार साहब से बिदा होकर मैं घर चला। चौगने से लुहटे की लाग हवा थी गई थी; पर वहाँ पहुँचकर मेरे रोई सहे हो गये। मैं काप-की-काप

एक मिनट वहाँ खड़ा हो गया। सहसा पीछे देखा। छाया की भाँति एक स्त्री मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। मुझे खड़ा देखकर वह स्त्री भी रुक गई और एक दूकान में कुछ खरीदने लगी।

मैंने अपने हृदय से प्रश्न किया— क्या वह तूरया है ?

हृदय ने उत्तर दिया—हाँ, शायद वही है।

तूरया मेरा पीछा क्यों कर रही है ? यह सोचता हुआ मैं घर पहुँचा और खाना खाकर लेटा ; पर आज की घटनाओं का मुझ पर ऐसा असर पड़ा था कि किसी तरह भी नींद न आती थी। जितना ही मैं सोने का यत्न करता, उतना ही नींद मुझसे दूर भागती।

कौजी बड़ियाल ने चारह बजाये, एक बजाये, दो बजाये ; लेकिन मुझे नींद न थी। मैं करवटें बदलता हुआ सोने का उपक्रम कर रहा था। इसी अधुड़-धुन में कद नींद ने मुझे धर दगाया, मुझे ज़रा भी याद नहीं।

अद्यपि मैं सो रहा था ; लेकिन मेरा ज्ञान जाग रहा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री, जिसकी आकृति तूरया से बहुत कुछ मिलती थी ; लेकिन उससे कहीं अधिक भयावनी थी, दीवार फोड़कर भीतर घुस आई है। उसके हाथ में एक तेज छुरा है, जो लालटेन के प्रकाश में चमक रहा था। वह दबे पाँव, सतर्क नेत्रों से ताकती हुई धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही है। मैं उसे देखकर उठना चाहता हूँ ; लेकिन हाथ-पैर मेरे ज़ादू में नहीं हैं। मानो उनमें जान है ही नहीं। वह स्त्री मेरे पास पहुँच गई। थोड़ी देर तक मेरी ओर देखा, और फिर अपने छुरेवाले हाथ को ऊपर उठाया। मैं चेल्लाने का उपक्रम करने लगा ; लेकिन मेरी विगधी बँध गई। शब्द झरने फूटा ही नहीं। उसने मेरी दोनों हाथों को अपने घुटने के नीचे दबाया और मेरी छाती पर सवार हो गई। मैं छटपटाने लगा और मेरी आँखें खुल गईं। सचमुच एक काबुली औरत मेरी छाती पर सवार थी। उसके हाथ में छुरा था और वह छुरा मारना ही चाहती थी।

मैंने कहा—कौन तूरया ?

यह वास्तव से तूखा ही थी। उसने मुझे बलपूर्वक दबाते हुए कहा—
हाँ, मैं तूखा ही हूँ। आज तूने मेरे बाप का जून किया है, उसके बदले में
तेरी जान जायगी।

यह कहकर उसने अपना घुरा ऊपर उठाया। हम समय मेरे सामने
जान और राख का प्रश्न था। जीवन की आकाशा ने मुझमें साहस का
सम्भार किया। मैं मरने के लिए तैयार न था, मेरे परमात्मा और उसमें श्रम
भी बाकी थी। मैंने बलपूर्वक अपना दाहिना हाथ मुझमें का प्रथम किया
और एक ही आदके से मेरा हाथ छूट गया। मैंने अपनी पूरी ताकत से तूखा
का घुराबाहा हाथ पकड़ लिया। न साहस क्यों तूखा ने छूट भी विरोध
न किया। वह मेरे हाथ को देखती हुई मेरी पगली से उठर आई। उनकी
पाँवों पर आई हुई थी और वह एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी।

मैंने हँसकर कहा—तूखा, श्रम तो पास पकट गया। श्रम तेरे मरने की
पारी है। तेरे बाप को मारा और श्रम तुझे भी मारता हूँ।

तूखा श्रम भी एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी। उसने कुछ भी
उत्तर न दिया।

मैंने उसे अगोदरते हुए कहा—चोखती क्यों वहीं? श्रम तो तेरी जान
मेरी सुछी में है।

तूखा का भीतर हटा। उसने बड़े गम्भीर और दृढ़ कंठ से कहा—तू मेरा
भाई है। तूने अपने बाप की जान ली आज!

तूखा की बात सुनकर तुझे उस आत्मन भी हँसी आ गई!

मैंने हँसते हुए कहा—अच्छी नदर भी रोते हैं, वह आज ही तुझे
साहस हुआ।

तूखा ने आत्म रक्षर में कहा—तू मेरा खोका हुआ बच्चा भाई काटिर है।
तू तो तेरे हाथ में निशान है, वही दक्का रहा है कि तू मेरा खोका
हुआ भाई है।

बचपन से ही मेरे हाथ में एक साँप गुदा हुआ था। और यही मेरी पहिचान फ़ौजी रजिस्टर में भी लिखी हुई थी।

मैं हँसकर कहा—तूरया, तू मुझे सुलाचा नहीं दे सकती। मैं अब तुझे किसी तरह न छोड़ूँगा।

तूरया ने अपने हाथ से छुरा फेंककर कहा—सचमुच तू मेरा भाई है। अगर तुझे विश्वास नहीं होता, तो देख, मेरे दाहिने हाथ में भी ऐसा ही साँप गुदा हुआ है।

मैंने तूरया के हाथ पर दृष्टि डाली, तो वहाँ भी बिलकुल मेरा ही जैसा साँप गुदा हुआ था।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—तूरया, मैं तेरा विश्वास नहीं कर सकता, यह इत्तफाक की बात है।

तूरया ने कहा—मेरा हाथ छोड़ दे। मैं तुरूपर वार न करूँगी। अफ़्रीदी मूठ नहीं बोलते।

मैं उसका हाथ छोड़ दिया, वह पृथ्वी पर बैठ गई और मेरी ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसने कहा—अच्छा तुझे अपने माँ-बाप का पता है ?

मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया—नहीं, मैं सरकारी अनाथालय में पाला गया हूँ।

मेरी बात सुनकर तूरया उठ खड़ी हुई, और बोली—तब तू मेरा खोया हुआ बड़ा भाई नाज़िर ही है। मेरे पैदा होने के एक साल पहले तू सोया था। मेरे माँ-बाप तब सरकारी फ़ौज पर दबावा डालने के लिए आये थे और तू भी साथ था। मेरी माँ लड़ने में चढ़ी होशियार थी। तू उनकी पीठ से दँधा हुआ था और वे लड़ रही थीं। इसी समय एक गोली उनके पैर में लगी और वे गिरकर बेहोश हो गईं। वस, कोई तुझे खोल ले गया। मेरी माँ को मेरा बाप अपने कन्धे पर उठा लाया; लेकिन तुझे न खोज सका। बहुत तलाश किया; लेकिन कहीं भी तेरा पता न लगा। अम्माँ अक्सर तेरी चर्चा किया करती थीं। उनके हाथ में भी यही निशान था।

यह कहकर उसने फिर वही हाथ मुझे दिखलाया । मैं उसका और सपना सोंप मिलाने लगा । चारतव में दोनों सोंप हूबहू एक-से थे, बाल-भर भी अन्तर न था । मैं हताश-सा होकर चारपाई पर गिर पड़ा ।

तूरया मेरे पास बैठकर सरनेद मेरे माथे का पर्माणा पोंछने लगी । उसने कहा—नाज़िर, मैं कहती थी कि तू मरा नहीं, ज़िन्दा है । एक दिन ज़रूर तू हम लोगों से मिलेगा ।

तूरया की बात पर अब मुझे विश्वास हो आया था । मैं जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ कह रहा था (क तूरया जो कहती है, सच है । मैंने एक लम्बी साँस लेकर कहा—क्यों तूरया, मैंने जितने आज साग है, यह हम लोगों का बाप था ?

तूरया के मुँह पर शोक का एक छोटा-सा साइकल बिर छाया । उसने बड़े ही दुःखपूर्ण स्वर में कहा—हो नाज़िर, यह सपना हमारा बाप ही था । कौन जानता था कि यह सपने प्यार लड़के के हाथों हवाल होगा ।

फिर सान्त्वना-पूरी स्वर में बोली—लेकिन नाज़िर, तुम्हें का अनजान में यह काम किया है । बाप के मरने से मैं बिल्कुल अकेली हो गई थी ; लेकिन अब तुम्हें पाकर मैं बाप के रंग को भूक्त जाऊँगी । नाज़िर, तू रंग न कर । तुम्हें क्या मालूम था कि कौन तेरा बाप है और कौन तेरी माँ है ! देर, मैं ही तुम्हें मारने के लिए आई थी, तुम्हें मार दाखती ; लेकिन तुम्हारे अन्दर-धानी से मैंने अपना खानदान निशान देख लिया । तुम्हारे ऐसी ही सरजी थी ।

तूरया से मालूम हुआ कि मेरे बाप का नाम हैदरखान था, जो दमोदरियों के एक गिराह का सरदार था । मैंने सरदार रिम्तक़िह के सरदारप में भी सुका से बातें की, तो मालूम हुआ कि तूरया सरदार मारद की प्यार करने लगी थी । यह हमारे बाप से लड़-भिरकर सरदार साहब से निकाल करे आई थी ; लेकिन वहाँ हकी की की पाकर वह ईर्ष्या और क्रोध में डाली ी गई, और उसने उनकी को की हत्या कर डाली । बाहुकी औरत के नेप

में जाकर वह कुछ मजाक करना चाहती थी ; लेकिन घटना-चक्र उसे दूसरे ही ओर ले गया ।

मैंने सरदार साहब की दशा का वर्णन किया । सुनकर वह कुछ सोचती रही और फिर कहा—नहीं, वह आदमी कूठा और दगाबाज़ है । मैं उससे निकाह नहीं करूँगी । लेकिन तेरी खातिर अब सब भूल जाऊँगी । कल उनके बच्चों को ले आना, मैं प्यार करूँगी ।

प्रातःकाल तुरया को देखकर मेरा नौकर आश्चर्य करने लगा । मैंने उससे कहा—यह मेरी बहन है ।

नौकर को मेरी बात पर विश्वास न हुआ । तब मैंने विस्तारपूर्वक सब हाल कहा और उसे उसी समय अपने बाप की लाश की स्मरण लेने के लिए प्रेरित किया । नौकर ने धाकर कहा—लाश अभी तक धाने पर रखी हुई है ।

मैं बड़े साहब के नाम एक पत्र लिखकर सब हाल बता दिया और लाश लेने के लिए दरखवास्त की । उसी समय साहब के वहाँ से स्वीकृति आ गई ।

एक पत्र लिखकर मेजर साहब को भी बुलवाया ।

मेजर साहब ने धाकर कहा—क्या बात है असद ? तुम्हारी बच्ची आने के लिए क्यों लिखा ?

मैंने हँसते हुए कहा—मेजर साहब, मेरा नाम असद नहीं रहा, मेरा असली नाम है नाज़िर ।

मेजर साहब ने आश्चर्य मेरी ओर देखते हुए कहा—रात-भर मैं तुम पागल तो नहीं हो गये ?

मैंने हँसते हुए कहा—नहीं सरदार साहब, अभी और सुनिए । तुम्हारी मेरी सगी बहन है, और जिसे कल मैंने मारा, वह मेरा बाप था ।

सरदार साहब मेरी बात सुनकर मानो आकाश से गिर पड़े । उनकी आँखें कपाल पर चढ़ गईं । उन्होंने कहा—क्यों असद, तुम मुझे भी पागल कर डालोगे ?

मैंने सरदार साहब का हाथ पकड़कर ~~कहा~~—आइए, तूरया के मुँह से ही सब हाल सुन लीजिए। तूरया मेरे वहाँ बैठी हुई खापली प्रतीक्षा कर रही है।

सरदार साहब तकते की हालत में मेरे पीछे-पीछे चले। तूरया उन्हें आते देखकर उठ खड़ी हुई और हिचकी हुई बोली—कैदी, तुम क्या गीत फिर गाओ। तूरया की बात सुनकर मैं और सरदार साहब भी हँसने लगे।

सरदार साहब की बिठाकर मैंने विचार-पूर्वक सब हाल बताया। कठानी सुनकर सरदार साहब ने मुझसे कहा—साहित्य, अब तुम्हें साहित्य करना होगा, तूरया को मैं तुमसे सींगता हूँ। मैं इसके साथ विदाग करूँगा।

मैंने हँसकर कहा—लेकिन आप हिन्दू हैं, मैं हूँ हम लोग मुसलमान। सरदार साहब ने हँसकर कहा—पण्डितियों की सीढ़ी का नाम क्या है। तूरया ने उहाँ समथ कहा—लेकिन सरदार साहब, मैं तुम्हें विदाग नहीं करती, हाँ, अगर तुम अपने दानों वस्त्रों को मेरे पास लेजो, तो मैं इनकी सो बात जाऊँगी।

सरदार साहब तेरते हुए बिदाग हुए।

उसी दिन सात ही इन्हे सरदार साहब, तूरया और तुम साहित्यियों के साथ आकर अपने घर की तरफ चले गये।

सुनज देव रहा था। धीरे-धीरे चौधरा हो रहा था; और एक बोली, तूरया भी है; अपने घर की तरफ चले गये।

